अध्याय 11

यीशु का अधिकार

सुसमाचार के सहदर्शी विवरणों को पढ़ते हुए हमें लगभग यही प्रभाव मिलता है कि यीशु ने अपना अधिकतर समय गलील में बिताया और वह यरूशलेम में नहीं गया। परन्तु यूहन्ना बताता है कि वह बड़े पर्वों पर यरूशलेम में जाता था (यूहन्ना 2:13; 5:1; 7:10)। बैतलहम का छोटा सा कस्बा यरूशलेम से दो मील की छोटी सी दूरी पर था और यीशु के उस इलाके में होने पर यह उसका घर होता था। वहां पर उसका स्वागत मरियम, मारथा और लाज़र नामक उसके मित्रों द्वारा किया जाता था। वह यरूशलेम नगर में रात नहीं रुकता था, शायद इसलिए कि बहुत से यहूदी वहां उसे मार डालना चाहते थे। मरियम, मारथा और लाज़र के साथ उसकी गहरी दोस्ती यह सुझाव देती है कि वह उनके घर में रात को कई बार रुका होगा।

यीशु शुक्रवार वाले दिन बैतनिय्याह में पहुंचा होगा, जहां उसने इन मित्रों के साथ सब्त का समय बिताया होगा। इस परिवार के साथ, फिर उसने शमौन कोड़ी के घर संगति का आनन्द लिया।[1] यूहन्ना 12:2-8 के अनुसार, मरियम ने कीमती तेल के साथ उसका अभिषेक किया (देखें मत्ती 26:6-13; मरकुस 14:3-9)। यीशु का विजयी प्रवेश अगले दिन हुआ (यूहन्ना 12:12)।[2] इसलिए, हमने उसका अध्ययन आरम्भ किया है जिसे ''दु:ख उठाने का सप्ताह'' कहा गया है। इस सप्ताह के दौरान यीशु ने अपने आपको क्रूस का दु:ख उठाने के लिए तैयार करते हुए, यहूदियों के बीच अपने अंतिम कार्य को पूरा किया।

यरूशलेम में विजयी प्रवेश (11:1-11)[3]

[1]जब वे यरूशलेम के निकट, जैतून पहाड़ पर बैतफगे और बैतनिय्याह के पास आए तो उसने अपने चेलों में से दो को यह कहकर भेजा, [2]''सामने के गाँव में जाओ, और उस में पहुँचते ही एक गदही का बच्चा, जिस पर कभी कोई नहीं चढ़ा, बंधा हुआ तुम्हें मिलेगा। उसे खोल लाओ। [3]यदि तुम से कोई पूछे, 'यह क्यों करते हो?' तो कहना, 'प्रभु को इस का प्रयोजन है,' और वह शीघ्र उसे यहाँ भेज देगा।'' [4]उन्होंने जाकर उस बच्चे को बाहर द्वार के पास चौक में बंधा हुआ पाया, और खोलने लगे। [5]उनमें से जो वहाँ खड़े थे, कोई कोई कहने लगे, ''यह क्या करते हो, गदही के बच्चे को क्यों खोलते हो?'' [6]जैसा यीशु ने कहा था, वैसा ही उन्होंने उनसे कह दिया; तब लोगों ने उन्हें जाने दिया। [7]उन्होंने बच्चे को यीशु के पास लाकर उस पर अपने कपड़े डाले और वह उस पर बैठ गया। [8]तब बहुतों ने अपने कपड़े मार्ग में बिछाए और औरों ने खेतों में से डालियाँ काट काट कर फैला दीं। [9]जो उसके आगे आगे जाते और पीछे पीछे चले आते थे, पुकार-पुकार कर कहते जाते थे, ''होशाना! धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है! [10]हमारे पिता दाऊद का राज्य जो आ रहा है; धन्य है! आकाश में होशाना!'' [11]वह यरूशलेम पहुँचकर मन्दिर में आया, और चारों ओर सब वस्तुओं को देखकर बारहों के साथ बैतनिय्याह गया, क्योंकि साँझ हो गई थी।

आयतें 1-3. जब वे यरूशलेम के निकट, जैतून पहाड़ पर बैतफगे और बैतनिय्याह के पास आए, तो यीशु ने उन्हें गदही का बच्चा लाने भेज दिया। उसने उनसे कहा, **''सामने के गाँव में जाओ, और उस में पहुँचते ही एक गदही का बच्चा, जिस पर कभी कोई नहीं चढ़ा, बंधा हुआ तुम्हें मिलेगा। उसे खोल लाओ।''** उसने उन्हें यह भी बताया कि उस जानवर को लेने पर यदि कोई कारण पूछे तो क्या कहना है। यदि कोई उनसे पूछता तो उन्हें यह कहना था, **''प्रभु को इस का प्रयोजन है।''** चेले के उस गदहे को ले जाने पर लोगों को यकीन दिलाया जाना था कि इसे चोरी नहीं किया जा रहा।

यीशु ने अपनी व्याख्या में ''प्रभु'' (κύριος, *kurios*) शब्द का इस्तेमाल क्यों किया गया? गदहे को ले जाने देने वालों को पता होगा कि ''प्रभु'' यीशु मसीह को कहा गया है। निश्चय ही यदि वे यीशु को ''प्रभु'' मानते थे, तो उन्हें भरोसा होगा कि गदहा उन्हें लौटा दिया जाएगा। यह स्पष्ट है कि यहूदिया में यीशु के बहुत से ''सेवक'' थे जो उसकी सेवा के लिए तैयार खड़े थे। लूका 19:34 के समानांतर विवरण की व्याख्या यह अर्थ देने के लिए की जा सकती है कि उसका मालिक पहले मसीह से मिला था। वह मिला था या नहीं परन्तु प्रभु को पता था कि इस आदमी ने जो कुछ मांगा जाना था वह उदारतापूर्वक दे देना था।

लोग गदहे की सवारी करने में शर्म नहीं करते थे। वास्तव में ऐसे पशु को कीमती जायदाद माना जाता था। अय्यूब की सम्पत्ति में गदहों की गिनती बताई गई (अय्यूब 1:3; 42:12), फिरौन द्वारा अब्राहम को दिए गए बहुत से उपहारों में गदहे शामिल थे (उत्पत्ति 12:16), और याकूब द्वारा एसाव को दिए गए उपहारों में भी वे शामिल थे (उत्पत्ति 32:15)। पुराने नियम में धनवान न्यायियों के पुत्र और पोते के गदहों की सवारी करने की बात बताई गई है (न्यायियों 10:4; 12:14)। राजा लोग गई बार गदहों या खच्चरों की सवारी किया करते थे। सुलैमान अपने खुद के राज्याभिषेक के लिए जाने के समय दाऊद के खच्चर पर चढ़कर गया (1 राजा. 1:33)।

यशायाह 9:6 की भविष्यद्वाणी का संकेत ''शांति का राजकुमार'' के रूप में यीशु की पहचान उसके गदही पर सवार होने के द्वारा दिया गया था, जो कि युद्ध के बजाय शांति का प्रतीक है। इसके अलावा गदही के इस बच्चे पर पहले कभी कोई सवार नहीं हुआ था (11:2)। कोई जानवर जिस पर पहले से किसी ने सवारी की हो या उस पर जुआ रखा गया हो, पवित्र उद्देश्य के लिए सही नहीं होता था (देखें गिनती 19:2; व्यव. 21:3; 1 शमूएल 6:7)। बिना सिधाया गदही का यह बच्चा थोड़ा बेकाबू हो सकता था, परन्तु अपने सवार के रूप में इसने संसार के स्वामी को शांति से स्वीकार कर लिया।

आयतें 4-6. जहां गदहा मिलना था उस स्थान की बात यीशु के पूर्वज्ञान को दिखाती है जैसे पुराने नियम में नबियों और भविष्यद्वक्ताओं में दिखाया गया है। सब कुछ वैसे ही हुआ जैसे उसने बताया था कि होगा। 11:5, 6 में हुई बातचीत से सुझाव मिलता है कि स्वामी या उसके सेवकों ने खुशी खुशी यीशु के चेलों को अपना जानवर ले जाने दिया।

गदही के इस बच्चे को लेना सारे यरूशलेम में यह घोषणा करने के लिए कि यीशु मसीहा है विजयी प्रवेश की तैयारी का भाग था।[4] यह उसका अब तक का सबसे साहसी कार्य था! वह लोगों की प्रशंसा या सांसारिक राजा होने की घोषणा नहीं करना चाह रहा था। यीशु को पता था कि इस कार्य से उसके लिए यहूदी अगुओं की घृणा भड़केगी और इन शत्रुओं को उसे क्रूस पर

जल्दी से भेजने के कार्य के लिए विवश करेगी।

आयत 7. चेलों ने अपने बाहरी वस्त्र उतारकर, प्रभु के लिए नरम काठी बनाने के लिए गदहे पर रख दिए। उन्होंने ''यीशु को [गदहे पर] बिठा दिया'' (लूका 19:35), और वह नगर की ओर चल दिया।

आयत 8. उसके बैठ जाने पर, **बहुतों ने अपने कपड़े** उसके **मार्ग में बिछाए** और **खेतों में से डालियाँ काट काट कर फैला दीं** (देखें मत्ती 21:8; लूका 19:36; यूहन्ना 12:13)। उनका मानना होगा कि यहूदियों के राजा के रूप में यह उसके राज्याभिषेक का समय है। इसके अलावा इस सार्वजनिक प्रवेश के दौरान लोगों द्वारा इस्तेमाल की गई अभिव्यक्तियां निश्चय ही यह कहने के लिए थीं कि ''यीशु ही हमारा मसीहा है!''

यरूशलेम में इस प्रवेश का वर्णन सुसमाचार के चारों विवरणों में है (देखें मत्ती 21:1-11; लूका 19:28-44; यूहन्ना 12:12-19)। प्रेरितों पर इसकी छाप पड़ गई होगी और यीशु के साथ उनके सबसे रोमांचकारी दिनों में से यह एक दिन होगा। जैसा कि मत्ती 21:4, 5 पुष्टि करता है, स्पष्ट रूप में इससे जकर्याह 9:9 की मसीहा की भविष्यद्वाणी पूरी हुई:

> हे सिय्योन बहुत ही मगन हो। हे यरूशलेम जयजयकार कर! क्योंकि तेरा राजा तेरे पास आएगा; वह धर्मी और उद्धार पाया हुआ है, वह दीन है, और गदहे पर वरन गदही के बच्चे पर चढ़ा हुआ आएगा।

आयतें 9, 10. लोग चिल्ला रहे थे,

''होशाना! धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है! हमारे पिता दाऊद का राज्य जो आ रहा है; धन्य है! आकाश में होशाना!''

लोग यीशु की स्तुति ''दाऊद का संतान'' के रूप में कर रहे थे (मत्ती 21:9; देखें भजन 89:3, 4)। वे उसे मसीहा, राजा और विजेता के रूप में ग्रहण कर रहे थे। उनके पुकारने का अर्थ यह था कि उसकी ताजपोशी होने वाली है। इदूमी होने के कारण, हेरोदेस को अधिकतर यहूदियों द्वारा ज़बर्दस्ती राजा बना माना जाता था न कि वास्तविक राजा। यीशु ने बताया कि अपना राज्य पाने के लिए उसका ''जाना'' आवश्यक था (देखें यूहन्ना 16:7) जबकि हेरोदेस को सत्ता रोम से प्राप्त हुई थी (देखें लूका 19:11, 12)। यीशु का राज्याभिषेक सचमुच में निकट था, परन्तु यह वैसा नहीं होना था जैसे इन चेलों का विचार था।

इब्रानी भाषा में ''होशाना'' का अर्थ, ''बचा ले, मेरी प्रार्थना है''[5] है, और यह परमेश्वर से अपने लोगों को बचाने के लिए स्तुति और याचना दोनों थी।[6] अरामी रूप में इस शब्द का अर्थ है ''हे यहोवा, विनती सुन, उद्धार कर'' (देखें भजन 118:25)। यह जय जयकार यात्रियों द्वारा फसह के पर्व के लिए यरूशलेम को जाते हुए की जाती थी। ''जो आता है'' वही ''आने वाला'' था जो कि मसीहा के लिए एक सामान्य यहूदी अभिव्यक्ति थी। ''धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है'' भजन 118:26 का हवाला है। ''हमारे पिता दाऊद का राज्य जो आ रहा है'' सुझाव देता है कि बहुत से लोगों को राज्य के एकदम से आ जाने की उम्मीद थी। परमेश्वर ने दाऊद को वचन दिया था, ''तेरा घराना और तेरा राज्य मेरे सामने सदा अटल बना रहेगा; तेरी गद्दी सदैव

बनी रहेगी'' (2 शमूएल 7:16; देखें भजन 132:11; यहेज. 37:24)।

यीशु ने कहा था कि उसका राज्य सामर्थ के साथ आएगा, परन्तु यह अभी नहीं आना था। उसकी सामर्थ पवित्र आत्मा के बहाए जाने और कलीसिया की स्थापना के साथ आनी थी (देखें मरकुस 9:1; प्रेरितों 1:6-8; प्रेरितों 2)। इसलिए राज्य उसके जी उठने के बाद आया और नये नियम में इसके बाद में अस्तित्व में होने की बात कही गई है (कुलु. 1:13; इब्रा. 12:28)।

भीड़ में से कुछ गलीलियों ने पहले, यीशु को ज़बर्दस्ती राजा बनाने की कोशिश की थी (यूहन्ना 6:15)। इस अवसर पर भी उनके दिमाग में यही इरादा रहा होगा। यह दु:ख की बात है कि यहूदी लोगों ने यह समझने के लिए कि वह ''अपने लोगों का उनके पापों से उद्धार'' करने आया था (मत्ती 1:21), न कि उन्हें रोमियों से छुड़ाने के लिए, भजन 22, 118, और यशायाह 53 की मसीहा की भविष्यद्वाणियों पर ध्यान नहीं दिया।

भीड़ के लोग स्पष्टतया गलील और आस पास के इलाकों से उसके पीछे आए थे, जिन्होंने अंधे बरतिमई की चंगाई के बारे में सुना या देखा था (10:46-52)। हाल ही में लाज़र के जी उठने की बात से उनमें से बहुत से लोग प्रभावित हुए होंगे और इस कारण वे उसके पीछे आए होंगे (यूहन्ना 12:17-19)। यीशु के लिए उनका जोश पूरी उमंग में था। स्तुति के अपने शब्दों के साथ और महाराजा की तरह मार्ग पर उसके आगे अपने कपड़े बिछाकर उन्होंने उसका आदर किया।[7]

निश्चय ही ये आराधक वे नहीं थे जो पांच दिनों बाद पुकार रहे थे, ''उसे क्रूस पर चढ़ा दो!'' (15:13, 14)। आम तौर पर कहा जाता है कि यही वे लोग थे; परन्तु प्रधान याजकों ने यरूशलेम के यहूदियों को भड़काया था, जबकि इनमें से अधिकतर लोग गलील से थे, जो वहां से यीशु के पीछे आए थे और मार्ग में उन्होंने आश्चर्यकर्मों को देखा था। यदि इन्हीं लोगों ने बाद में यीशु को क्रूस पर चढ़ाए जाने के लिए कहा, तो वे यीशु के क्रूस पर चढ़ाए जाने से पहले की उसके अपमानित चेहरे से निराश और मायूस हुए होंगे।

गलीली चेलों और यरूशलेम के चापलूस लोगों के बीच जो महायाजक, प्रधान याजकों और महासभा के अधिकारियों के अधीन थे, अंतर है। यह सम्भव है कि चंचल मनुष्य भीड़ के किसी और कहने पर तेजी से पाला बदल लें। कुछ लोगों को लगा होगा, ''शायद हमारे अगुओं को कोई ऐसी बात पता चली है जिसका हमें पता नहीं है।''

फरीसी लोग यरूशलेम के यहूदियों को नियन्त्रित कर सकते थे परन्तु गलील के लोगों को शायद नहीं। इस श्रद्धा से फरीसियों में घबराहट पैदा हो गई, परन्तु लूका 19:39, 40 हमें बताता है कि यीशु ने उन्हें यह पुकारने से रुकने को नहीं कहा: ''भीड़ में से कुछ फरीसी उससे कहने लगे, 'हे गुरु, अपने चेलों को डांट।' उसने उत्तर दिया, 'मैं तुम से कहता हूं, यदि ये चुप रहें, तो पत्थर चिल्ला उठेंगे।''' परमेश्वर की भविष्यद्वाणियां हमेशा पूरी होती हैं।

आयत 11. यरूशलेम पहुँचकर यीशु **मन्दिर** में गया और लूका 19:41 के अनुसार, ''जब वह निकट आया तो नगर को देखकर उस पर रोया।'' कुछ ही दिनों में, उसने शास्त्रियों और फरीसियों को डांटने के बाद ये कोमल शब्द कहे: ''हे यरूशलेम, हे यरूशलेम! तू भविष्यद्वक्ताओं को मार डालता है, और जो तेरे पास भेजे गए, उन पर पथराव करता है। कितनी ही बार मैंने चाहा कि जैसे मुर्गी अपने बच्चों को अपने पंखों के नीचे इकट्ठा करती है, वैसे ही मैं

भी तेरे बालकों को इकट्ठा कर लूं, परन्तु तुमने न चाहा'' (मत्ती 23:37)।

यरूशलेम में आनन्द भरे प्रवेश के बाद, यीशु के मन्दिर में **चारों ओर सब वस्तुओं को देखकर** लहज़े में एक बड़ा बदलाव आया। केवल मरकुस यह कहता है कि अगले दिन मन्दिर को शुद्ध करने से पहले यह प्रारम्भिक मुआयना हुआ (11:15-18; देखें मत्ती 21:12, 13; लूका 19:45)। वह यहूदी अगुओं को उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए विवश करने के लिए अपनी अगली आक्रामक कार्यवाही करने की योजना बना रहा होगा।

मन्दिर के लिए शब्द (ἱερόν, *hieron*) का अर्थ ''पवित्र अहाते का पूरा घेरा'' यानी मन्दिर का इसके सारे भवनों और ड्योढ़ियों वाला पूरा इलाका। मरकुस 14:58 और 15:29, 38 में (ναός, *naos*) शब्द ''पवित्र भवन (या मन्दिर)'' के लिए है न कि इसके आस पास के सब मैदानों या भवनों के लिए।[8] मन्दिर के प्रांगण को देखने के बाद यीशु बैतनिय्याह में, सम्भवतया मरियम, मारथा और लाज़र के घर लौट गया।[9]

अंजीर के फल-रहित वृक्ष को श्राप देना (11:12-14)[10]

[12]दूसरे दिन जब वे बैतनिय्याह से निकले तो उसको भूख लगी। [13]वह दूर से अंजीर का एक हरा पेड़ देखकर निकट गया कि क्या जाने उसमें कुछ पाए: पर पत्तों को छोड़ कुछ न पाया; क्योंकि फल का समय न था। [14]इस पर उसने उससे कहा, ''अब से कोई तेरा फल कभी न खाए!'' और उसके चेले सुन रहे थे।

आयतें 12-14. बैतनिय्याह में रात बिताने के बाद, जब यीशु अपने चेलों के साथ यरूशलेम को लौट रहा था, **तो उसको भूख लगी। अंजीर का एक हरा पेड़** देखकर यीशु **निकट गया कि क्या जाने उसमें कुछ पाए**, परन्तु उसे कोई अंजीर न मिली **क्योंकि फल का समय न था**। उसने इस पेड़ को श्राप दे दिया कि इसमें फिर कभी कोई अंजीर न लगे।

यह कोई व्यर्थ बात नहीं थी, बल्कि इसका गहरा अर्थ और संकेत था। इसने एक क्रियाशील दृष्टांत का काम किया। ''फल का समय न था'' इसलिए लगा कि पेड़ पर फल लगा हुआ है परन्तु इस पर फल नहीं था।[11] शायद ''यह कहना सही है कि ... प्रभु पके हुए छोटे अंजीर ढूंढ रहा था जिसके पत्ते, फसल से पहले पक्क गए थे।''[12] इसे भी महत्वपूर्ण सांकेतिक सबक यह है कि यीशु ने अपने मन्दिर में आकर, धार्मिकता देने में इसे फलरहित पाने पर इसके विनाश की भविष्यद्वाणी करनी थी (11:15-19; देखें मत्ती 24:1-34; मरकुस 13:1-30)। बाद में उसके चेलों को इसकी पूरी समझ आ जानी थी। (11:21 पर टिप्पणियां देखें।)

पुराने नियम में इस्राएल को आम तौर पर फल देने वाले वृक्ष के रूप में दिखाया गया था (देखें यिर्म. 8:13; 29:17; होशे 9:10, 16; मीका 7:1)। कुछ फलस्तीनी पेड़ों पर पहले अंजीर लगते और फिर पत्ते; इसलिए यीशु अंजीर के पेड़ का इस्तेमाल इस्राएलियों के धार्मिक जोश के फंदे होने के रूप में दिखा रहा होगा जिसमें वास्तविक कोई फल नहीं था। इस पेड़ और इसको श्राप दिए जाने से इस्राएल को सही ढंग से दर्शाया जा सकता है। आर. ए. कोल ने कहा है, ''पेड़ सा, मन्दिर सा, देश सा; तुलना बिल्कुल सही है।''[13]

लोगों ने अनुग्रह के उस समय को जो दिया जा रहा था समझा नहीं (लूका 19:44)। नगर

में अविश्वासियों के साथ वैसा ही होना था जैसा यीशु ने इस अंजीर के पेड़ के साथ किया। परमेश्वर के लोगों के रूप में जाने जाने वाले और प्रेम दिए जाने वाले नगर ने श्रापित होना था और ऐसे नष्ट हो जाना था, चाहे यहूदी लोग अब तक इसकी पहले वाली शान बहाल करना चाह रहे थे। यह परमेश्वर का पवित्र नगर नहीं है, न ही कभी हो सकता है; क्योंकि उसने इसे छोड़ दिया है और दो हज़ार वर्ष बीत गए हैं जब से सिय्योन के पवित्र पहाड़ पर उस मन्दिर में उसकी आराधना नहीं हुई। आज कुछ लोगों का दावा कि पृथ्वी पर हज़ार वर्ष के राज्य के दौरान इस मन्दिर को फिर से बनाया जाएगा और इसमें दिए जाने वाले बलिदान फिर से आरम्भ होंगे, यीशु के काम की और उद्धार के लिए इस पीढ़ी के अवसर की पूरी तरह से नासमझी है। यह भ्रम हज़ार वर्ष के राज्य की शिक्षा से निकला है और इसे नकारा जाना आवश्यक है, क्योंकि बाइबल में इसका कोई प्रमाण नहीं है। यीशु ने यहां पर वास्तव में यहूदियों के लिए कोई श्राप नहीं दिया, परन्तु अंजीर के पेड़ को कही गई उसकी बात में एक श्राप का संकेत लगता है, ''**अब से कोई तेरा फल कभी न खाए!**'' (11:14)।

मन्दिर का शुद्ध किया जाना (11:15-19)[14]

[15]फिर वे यरूशलेम में आए, और वह मन्दिर में गया; और वहाँ जो लेन-देन कर रहे थे उन्हें बाहर निकालने लगा, और सर्राफों के पीढ़े और कबूतर बेचनेवालों की चौकियाँ उलट दीं, [16]और मन्दिर में से किसी को बरतन लेकर आने जाने न दिया। [17]और उपदेश करके उनसे कहा, ''क्या यह नहीं लिखा है कि मेरा घर सब जातियों के लिये प्रार्थना का घर कहलाएगा? पर तुम ने इसे डाकुओं की खोह बना दी है ।'' [18]यह सुनकर प्रधान याजक और शास्त्री उसके नाश करने का अवसर ढूँढ़ने लगे; क्योंकि वे उससे डरते थे, इसलिये कि सब लोग उसके उपदेश से चकित होते थे। [19]साँझ होते ही वे नगर से बाहर चले गए।

इतनी सारी अति प्रशंसा के साथ यीशु के प्रवेश से फरीसी ईर्ष्या से भर गए थे; परन्तु बाद में उसके कारोबारियों को मन्दिर में से निकाल दिए जाने से वे और भड़क गए। यीशु ने अगुओं को अपने विरोध में जानबूझकर भड़काया। उसे पता था कि इस कार्यवाही से वे उसे तुरन्त मार डालने की अपनी योजना को अंजाम देने के लिए विवश हो जाएंगे। सम्भवतया यह उसी का इरादा था क्योंकि उसने ऐसा पहले एक बार किया था। परन्तु उन्हें अपनी चाल को रात को छिपकर अंजाम देना पड़ना था जब उसके पीछे चलने वाली भीड़ सों रही होती।

प्रभु को इस सब का पता था और उसने इसका हिसाब लगाया जिससे वे अपनी योजना के अनुसार करने की देरी किए बिना परमेश्वर के मेमने को फसह पर क्रूस पर चढ़ाते। उन्होंने फैसला लिया कि यह कार्यवाही ''पर्व के समय नहीं [करेंगे], कहीं ऐसा न हो कि लोगों में बलवा मच जाए'' (मत्ती 26:5)। पहले से जानते हुए, उसने उन्हें कार्यवाही करने के लिए उकसाया। मन्दिर को शुद्ध करके उन्हें जल्दी करने की चुनौती दी जिसे देरी से करने की उनकी योजना थी।

आयत 15. यरूशलेम में पहुंचने के बाद **मन्दिर में गया; और वहाँ जो लेन-देन कर रहे थे उन्हें बाहर निकालने लगा, और सर्राफों के पीढ़े और कबूतर बेचनेवालों की चौकियाँ**

उलट दीं। लेन देन करने वालों को बाहरी आंगन में से जहां अन्यजाति भी आकर प्रार्थना कर सकते थे, निकाल दिया गया। मन्दिर का आंगन बहुत बड़ा था, जिसे हेरोदेस ने पैंतीस एकड़ तक बढ़ा दिया था।[15] ''व्यापार का घर'' बताते हुए यीशु ने तीन वर्ष पहले इसे शुद्ध किया था (यूहन्ना 2:16)। कइयों का दावा है कि शुद्ध की जाने की घटना सिर्फ एक बार हुई, परन्तु प्रमाण उस सम्भावना के विपरीत है। सुसमाचार के अन्य सहदर्शी विवरणों में यीशु के लोगों को मन्दिर में से निकालने के विवरण मरकुस के विवरण के जैसे ही हैं और उन्हें इसी बाद वाले अवसर के संदर्भों में देखा जाना आवश्यक है।

इस सम्बन्ध में कि यूहन्ना अपनी जानकारी के लिए मरकुस पर निर्भर था या नहीं लियोन मौरिस ने लिखा:

> सहदर्शी विवरणों तथा यूहन्ना के विवरण में सबसे स्पष्ट अंतर यह तथ्य है कि वे इस घटना को यीशु की सेवकाई को उल्टे सिरों में रखते हैं।
>
> विवरणों के बीच केवल पांच शब्द सामान्य हैं। ...
>
> यूहन्ना के विवरण में पांच विशेष गुण हैं: भेड़ें और बैल; कोड़ा; सर्राफों के लिए शब्द; पैसे ''बिखेर दिए जाना''; और और आज्ञा [''इन्हें यहां से ले जाओ'']।
>
> केवल एक सहदर्शी [मरकुस के] विवरण में यीशु के मन्दिर के क्षेत्र में बर्तन लाने ले जाने की मना करने की बात है (मरकुस 11:16)।
>
> सहदर्शी विवरणों में, यीशु ने अपनी कार्यवाहियों को समझाने के लिए यशायाह 56:7 और यिर्मयाह 7:11 से उद्धृत किया, परन्तु यूहन्ना में यीशु ने बाइबल का कोई हवाला नहीं दिया। इसके बजाय चेलों को भजन 69:9 याद आया।
>
> सहदर्शी विवरणों में यीशु बेईमानी वाले व्यवहार पर आपत्ति कर रहा था, परन्तु यूहन्ना में जानवरों और पैसे का लेन देन के प्रबन्ध पर।[16]

मरकुस और यूहन्ना के विवरणों की तुलना करते हुए, ऐलन चैपल ने ''पीढ़े उलटने,'' मरकुस के ''लेन देन'' को शामिल करने, यूहन्ना को यीशु के ''मेरे पिता का घर'' कहने के संदर्भ के लिए अलग-अलग यूनानी शब्दों के इस्तेमाल तथा इस घटना में लोगों की प्रतिक्रियाओं को बताने में अंतर पर ध्यान दिया। मरकुस 11:15 जहां यह कहता है कि यीशु ने कबूतर बेचने वालों की चौंकिया उलट दीं, वहीं यूहन्ना 2:16 यीशु को केवल व्यापारियों से बात करते हुए दिखाता है।[17] तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि यीशु ने कारोबारियों को मन्दिर में से दो बार निकाला।

आयत 16. चौंकियां उलट देने के बाद यीशु ने **मन्दिर में से किसी को बरतन लेकर आने जाने न दिया**। जे. डब्ल्यू. मैक्गर्वे ने इस घटना की संक्षिप्त व्याख्या दी:

> मन्दिर का स्थान समतल और विशाल होने के कारण यरूशलेम के लोगों को लगता था कि यह इस्तेमाल किए जाने वाली आम जगह है, या नगर के एक भाग से दूसरे भाग में जाने का शॉटकट, परन्तु यीशु ने उन्हें पवित्र अहाते में कोई बोरी, थैला, घड़ा, डोल, टोकरा, गठरी या कोई ऐसी चीज़ नहीं ले जाने दी।[18]

मिशना में भी मन्दिर में से ''शॉटकट'' लेने की मनाही थी।[19]

आयतें 17, 18. यशायाह 56:7 और यिर्मयाह 7:11 से उद्धृत करते हुए यीशु ने लोगों को याद दिलाया कि मन्दिर **सब जातियों के लिये प्रार्थना का घर** होने के लिए था न कि **डाकुओं की खोह** बनाने के लिए। मन्दिर के प्रांगण में लेन देन की हर गतिविधि की अनुमति प्रधान याजक ने ही दी होगी, इसलिए यीशु बता रहा था कि उसका भी इसमें हाथ है।[20] यदि याजक बलिदान किए जाने वाले पशुओं को जो कोई लेकर आता था स्वीकृत न करते, तो बलिदान करने वाले को उन्हें मन्दिर में से ऊंची कीमतों पर खरीदना पड़ता था। यीशु ने ऐसी प्रथा की निंदा की! इसके अलावा मन्दिर के अधिकारी हर यहूदी नर से हर वर्ष लिए जाने वाले आधा शेकेल, ''मन्दिर का कर'' चुकाने के लिए यूनानी या रोमी सिक्के स्वीकार नहीं करते थे। यह सिक्का ''सूरी'' (पास के सूर के इलाके) मुद्रा का ''शुद्ध'' सिक्का होना आवश्यक था।[21] वे यह तर्क दे सकते थे कि परमेश्वर के मन्दिर के लिए कोई भी और चीज़ अच्छी नहीं है। मन्दिर में बेचने वाले अपनी चौकी की ऊंची कीमत चुकाते थे और वे उसकी कीमत वसूल करना चाहते थे।[22]

ये व्यापारी दूर दूर से आराधना के लिए आने वाले कंगालों को भी नहीं छोड़ते थे; क्योंकि 11:15 में कबूतर बेचने वालों का उल्लेख है, जो कि कंगालों द्वारा ही चढ़ाए जाते थे (देखें लूका 2:24)। इसलिए मन्दिर को शुद्ध करते हुए यीशु कंगालों के लिए भी अपनी चिंता दिखा रहा था। उसने बलिदान किए जाने वाले पशु को खरीदने या मन्दिर का कर चुकाने का विरोध नहीं किया, परन्तु उसी मन्दिर की ज़मीन पर दुगना वसूल करके परमेश्वर को धोखा देना बिल्कुल गलत था। अन्यजातियों का आंगन वह स्थान था जहां पर गैर यहूदी सच्चे परमेश्वर की आराधना कर सकते थे; यहूदियों को आने वाले अन्यजातियों को वचन सुनाना चाहिए था।[23] फरीसी ''एक जन को अपने मत में लाने के लिए सारे जल में और थल में फिरते'' थे (मत्ती 23:15), परन्तु घर में वे पैसा बनाने में इतने व्यस्त रहते थे।

मन्दिर के प्रति यीशु का बर्ताव सुसमाचार के विवरणों में दिखाया गया है: बारह वर्ष की आयु में उसने इसे अपने पिता का घर माना (लूका 2:46, 49)। तीस वर्ष की आयु में उसने बताया कि यह व्यवसाय करने का स्थान नहीं है (यूहन्ना 2:14-16)। अब उसने इसे ''सब जातियों के लिए प्रार्थना कर घर'' बताया (देखें यशा. 56:7)। उसने इस पर अफ़सोस जताया कि यहूदी हाकिमों ने इसे ''डाकुओं की खोह'' बना दिया था (देखें यिर्म. 7:11; मत्ती 21:13; लूका 19:46)। जी. कैम्पबेल मॉर्गन ने ध्यान दिलाया कि ''खोह'' उसे कहा जाता है जहां चोर छुपने के लिए, अपना माल बांटने और अपने अपराधों का पता लगने से बचने के लिए जाते हैं। अपनी सेवकाई के अंत के निकट जब यीशु ने कहा, ''देखो, तुम्हारा घर तुम्हारे लिये उजाड़ छोड़ा जाता है'' (मत्ती 23:38), तो शायद वह संकेत दे रहा था कि अब यह परमेश्वर का घर नहीं रहा था। अपने लालच को छुपाने के रूप में परमेश्वर के मन्दिर का इस्तेमाल करना, पाप ढांपने की परमेश्वर की योजना के विपरीत था।

यीशु जब यरूशलेम में होता तो वह लोगों को उपदेश देने के लिए मन्दिर में जाया करता था (यूहन्ना 18:20)। उसके लिए मन्दिर का एक पवित्र उद्देश्य था। यह उसके पिता का घर था, और इसे बदनाम करने वालों को निकालने के लिए पुत्र का पूरा अधिकार था। बेशक भवन अपने आप में पवित्र नहीं है, बल्कि परमेश्वर की उपस्थिति ने मन्दिर को पवित्र बनाया था। आज

परमेश्वर का घर उसके लोग अर्थात कलीसिया है (देखें इफि. 2:19-22)।

स्वाभाविक है कि जो कुछ यीशु ने किया उससे प्रधान याजक बड़े परेशान थे, क्योंकि यहूदी हाकिमों और प्रधान याजकों की कमाई का मुख्य स्रोत मन्दिर का कारोबार था। पहले पशु बेचने वालों और ''सराफ़ों को निकाल दिए'' जाने के बाद हमें इस बात का अधिक प्रमाण नहीं मिलता कि यहूदियों ने यीशु से पीछा छुड़ाने की योजना बनाई हो। यूहन्ना के अनुसार उन्होंने केवल जो उसने अभी-अभी किया था, उसके अधिकार का ''चिह्न'' देखना चाहा (यूहन्ना 2:18)। परन्तु इस दूसरी घटना के बाद **प्रधान याजक और शास्त्री उसके नाश करने का अवसर ढूँढ़ने लगे** (11:18)।

प्रेम करने वाले रब्बी के क्रोध को देखना जो बच्चों को आशीष देने के लिए समय निकालता था, देखने वाले के किए एक नया अनुभव था। इस क्रोध का कारण यूहन्ना 2:17 में बताया गया है: ''तेरे घर की धुन मुझे खा जाएगी'' (देखें भजन 69:9)। धर्मी क्रोध के इस प्रदर्शन से कइयों को यीशु में एलिय्याह की समानता दिखाई दी होगी (मरकुस 6:15)। यीशु की शिक्षा और व्यवहार से यहूदी अगुए डरते और लोग **चकित होते** थे (11:18)। वे हैरान थे कि कोई याजकों के सामने खड़ा हो गया। इसी कारण जब शुद्ध किए जाने का समय आया तो यीशु से और डरने के कारण वे गतसमनी में उसे पकड़ने के लिए अपने साथ भीड़ को ले गए। यीशु ने न्यायसंगत अधिकारियों की बात कभी नहीं टाली। महासभा के सामने अपनी सुनवाई के समय उसने शपथ दिलाए जाने पर ''परमेश्वर का पुत्र'' होने के आरोप को भी मान लिया (मत्ती 26:63, 64)। वे यीशु से डरते थे, परन्तु उन्होंने उसकी बात नहीं मानी।[24]

आयत 19. यीशु को पता था कि प्रधान याजक और शास्त्री अब उसकी मृत्यु का षड्यन्त्र रच रहे हैं। शीघ्र ही उनका उद्देश्य पूरा हो जाना था, परन्तु उसे मारकर वे अपने मन्दिर को नहीं बचा सकते थे। यीशु यरूशलेम में अब सुरक्षित रूप में रात नहीं बिता सकता था इसलिए पिछली रात तक वह दिन के ढलने पर शाम तक बैतनिय्याह में लौट गया।

अंजीर का पेड़ सूख गया और विश्वास के परिणाम (11:20-23)[25]

[20]फिर भोर को जब वे उधर से जाते थे तो उन्होंने उस अंजीर के पेड़ को जड़ तक सूखा हुआ देखा। [21]पतरस को वह बात स्मरण आई, और उसने उससे कहा, ''हे रब्बी, देख! यह अंजीर का पेड़ जिसे तू ने स्राप दिया था, सूख गया है।'' [22]यीशु ने उस को उत्तर दिया, ''परमेश्वर पर विश्वास रखो। [23]मैं तुम से सच कहता हूँ कि जो कोई इस पहाड़ से कहे, 'तू उखड़ जा, और समुद्र में जा पड़,' और अपने मन में सन्देह न करे, वरन् प्रतीति करे कि जो कहता हूँ वह हो जाएगा, तो उसके लिये वही होगा।''

आयत 20. यीशु द्वारा श्राप दिया गया अंजीर का फल रहित पेड़ स्पष्टतया बीती शाम को सूख गया था, परन्तु यीशु और उसके चेले बैतनिय्याह में रात बिताने के लिए पहाड़ के आस पास चले गए थे। अगली सुबह उन्होंने पेड़ को **जड़ तक सूखा हुआ देखा**। केवल मरकुस से ही हमें पता चलता है कि यह यीशु को क्रूस पर चढ़ाने जाने से पहले के अंतिम सप्ताह के मंगलवार का दिन था। उस दिन का मरकुस का विवरण 11:20-13:37 में है।[26]

आयत 21. यरूशलेम को वापस आते हुए पतरस ने कहा, ''**हे रब्बी, देख! यह अंजीर का पेड़ जिसे तू ने स्राप दिया था, सूख गया है।**'' यीशु को आम तौर पर ''रब्बी'' या कई बार ''रब्बोनी'' कहकर सम्बोधित किया जाता था।[27] सम्बोधन के ये आरामी या सामी शब्द ''मेरे गुरु'' के तुल्य हैं और *रब्ब* (*rabh*) शब्द से निकले हैं जिसका अर्थ है ''महान,'' ''प्रभु,'' या ''स्वामी।'' ''रब्बी'' का बुनियादी तौर पर अर्थ ''मेरे स्वामी'' है, चाहे ''इस 'मेरे' पर पूरे ज़ोर को हमेशा नहीं रखा जाता था।''[28]

केवल मरकुस ही बताता है कि पतरस ने ही पहले देखा कि पेड़ सूख गया है। इसका सूखना इतना अचानक हुआ कि प्रेरित एकदम हैरान थे। सूखने वाले पेड़ शाखाओं से जड़ तक सूखते हैं, परन्तु इतनी जल्दी नहीं।

यीशु आम तौर पर आशीष देता था। परन्तु यहां पर उसने श्राप दिया, या वह बात कह दी जो होने वाली थी। उसने पेड़ को श्राप क्यों दिया? क्योंकि इस पर फल नहीं लगा था। अंजीर के एक प्रकार के पेड़ में पहले ''खाने वाली गांठें होती हैं *टक्श* नामक जो जून में पकने वाले असली अंजीरों से पहले गिर जाती हैं। *टक्श* का न होना यह संकेत देता है कि इस पेड़ पर कोई अंजीर नहीं'' लगेगी।[29] और बहुत से कारण बताए गए हैं परन्तु समझाने के लिए यह ज़बर्दस्त था।

आयतें 22, 23. यीशु ने पतरस और दूसरे प्रेरितों से कहा, ''**परमेश्वर पर विश्वास रखो।**'' इससे उसने जो आगे प्रार्थना बताई उसका आधार बन गया, यानी ऐसी प्रार्थना जो पहाड़ को हिला सकती है। यीशु ने आगे कहा, ''**मैं तुम से सच कहता हूँ कि जो कोई इस पहाड़ से कहे, 'तू उखड़ जा, और समुद्र में जा पड़,' और अपने मन में सन्देह न करे, वरन् प्रतीति करे कि जो कहता हूँ वह हो जाएगा, तो उसके लिये वही होगा।**'' केवल विश्वास के ईश्वरीय दान वाला व्यक्ति[30] ऐसे श्राप को पूरा करवा सकता था। ऐसा विश्वास आज मसीही लोगों को नहीं दिया गया है। कुछ धार्मिक समूहों के दावा किए जाने के बावजूद, परमेश्वर हमारी अगुआई हमारी ''भावनाओं'' के द्वारा नहीं करता। हमारा विश्वास मसीह के वचन अर्थात बाइबल के अध्ययन के द्वारा आने वाला ''स्वाभाविक विश्वास'' (गैर चमत्कारी विश्वास) है। यीशु ने कहा, ''''वे सब परमेश्वर की ओर से सिखाए हुए होंगे।' जिस किसी ने पिता से सुना और सीखा है, वह मेरे पास आता है'' (यूहन्ना 6:45)। यह रोमियों 10:17 में पौलुस की बात से बिल्कुल मेल खाता है कि ''विश्वास सुनने से और सुनना मसीह के वचन से आता है।''

आज किसी को भी विश्वास आत्मिक दान के रूप में नहीं मिलता है, क्योंकि जो विश्वास वचन को सुनने से आता है वह चमत्कारी विश्वास नहीं है। पतरस को पानी पर चलने का विश्वास दिया गया था, जो कि एक चमत्कार था; यीशु ने कहा ''आ'' और एक शब्द से पतरस को विश्वास की चमत्कारी शक्ति मिल गई। परन्तु हवा और लहरों पर ध्यान देने पर पतरस का वह दान खो गया और वह डूबने लगा (मत्ती 14:28-30)। सत्तर जनों को दुष्टात्माओं को निकालने की सामर्थ दी गई (लूका 10:17), परन्तु प्रेरितों की तरह, इस्तेमाल की कमी या प्रार्थना की कमी के कारण सम्भवतया उन्होंने इस योग्यता को खो दिया, जिस कारण मरकुस 9:19 में डांट मिली: ''हे अविश्वासी लोगो, मैं कब तक तुम्हारे साथ रहूंगा? और कब तक तुम्हारी सहूंगा?''

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पौलुस ने तीमुथियुस को कहा कि ''परमेश्वर के उस

वरदान को'' जो उसमें था प्रज्वलित कर दे (2 तीम. 1:6)। नये नियम में कुछ लोगों को थोड़ी देर के लिए चमत्कारी विश्वास दिया गया था (देखें मत्ती 14:28-30; लूका 10:17), चाहे ''पहाड़ों को हटा देने वाले विश्वास'' का वास्तविक उदाहरण कोई नहीं है (1 कुरि. 13:2)।

मरकुस 11:23 वाली शब्दावली मत्ती 17:20 में भी मिलती है, और ऐसा ही विचार लूका 17:6 में मिलता है। हम चाहे यह पक्का नहीं कह सकते कि यीशु प्रतीकात्मक भाषा में बात कर रहा था कि नहीं, परन्तु पहाड़ों को हिला देने के विचार का इस्तेमाल कठिनाइयों पर जय पाने की एक सामान्य यहूदी अभिव्यक्ति के रूप में किया जाता था।[31]

वास्तव में पहाड़ को हिला देना कोई बड़ा काम नहीं होना था बल्कि प्रेरितों के द्वारा दूसरों में विश्वास उत्पन्न करने के बड़े काम किए जाने थे। यीशु ने इन लोगों को बताया,

> मैं तुम से सच सच कहता हूँ कि जो मुझ पर विश्वास रखता है, ये काम जो मैं करता हूँ वह भी करेगा, वरन् इनसे भी बड़े काम करेगा, क्योंकि मैं पिता के पास जाता हूँ। जो कुछ तुम मेरे नाम से माँगोगे, वही मैं करूँगा कि पुत्र के द्वारा पिता की महिमा हो। यदि तुम मुझ से मेरे नाम से कुछ माँगोगे, तो मैं उसे करूँगा (यूहन्ना 14:12-14)।

यूहन्ना 14-16 में की गई यीशु की प्रतिज्ञाएं प्रेरितों के लिए थीं, न कि हमारे लिए। कुछ दान और योग्यताएं जो उन्हें मिले थे, वह आज मसीही लोगों को नहीं दिए जाते। प्रेरित ऐसे काम केवल ''उसके नाम से'' या ''यीशु के अधिकार से'' कर सकते थे।

विश्वास से, प्रेरितों ने अपने प्रचार के द्वारा, प्रतीकात्मक रूप में ''जगत को उलटा पुलटा'' कर दिया था (प्रेरितों 17:6; NKJV; NRSV)। कई मामलों में तो यहूदीवाद का पूर्वाग्रह भी खत्म कर दिया गया। सुसमाचार प्रचार के लिए अवसर के द्वार आम तौर पर वहां खुल जाते हैं जहां हम सोच नहीं सकते कि ऐसा हो सकता है। कैसर के न्याय के दरबार के लोगों ने सुसमाचार को सुना और शीघ्र ही उसके घराने में ''पवित्र लोग'' पाए गए (देखें फिलि. 4:22)। क्या यह पहाड़ को हिला देना है? हमारे लिए तो ऐसा ही लगता यदि हम तब वहां होते। मुर्दों को जिला देना भी ऐसा ही लगता है बल्कि पहाड़ को हिला देने से भी बढ़कर व्यावहारिक। हमारे समय में मुर्दों को कोई जिला नहीं सकता! मृत्यु एक ऐसा ''पहाड़'' है जिसे समय के अंत में केवल मसीह हटाएगा।

आज मसीही लोग चाहे चमत्कार नहीं कर सकते परन्तु हमें प्रार्थना का दान दिया गया है। जब हम परमेश्वर की इच्छा के अनुसार मांगते हैं, तो वह हमारी सुनता है (याकूब 1:5-8)। आज हमें प्रकाशन के द्वारा ज्ञान पाने का कोई चमत्कारी तरीका नहीं है,[32] परन्तु परमेश्वर ने हमें अपना वचन दे दिया है। हम परमेश्वर के प्रबन्ध के अनुसार उसके वचन को अध्ययन करके और उसे मानकर उससे ''दान'' प्राप्त कर सकते हैं।

प्रार्थना की शर्तें (11:24-26)

[24]''इसलिये मैं तुम से कहता हूँ कि जो कुछ तुम प्रार्थना करके माँगो, तो प्रतीति कर लो कि तुम्हें मिल गया, और तुम्हारे लिये हो जाएगा। [25]और जब कभी तुम खड़े हुए प्रार्थना करते हो तो यदि तुम्हारे मन में किसी के प्रति कुछ विरोध हो, तो क्षमा करो: इसलिये कि

तुम्हारा स्वर्गीय पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा करे। [26]**[और यदि तुम क्षमा न करो तो तुम्हारा पिता भी जो स्वर्ग में है, तुम्हारा अपराध क्षमा न करेगा।'']**

आयत 24. यीशु ने कहा कि पहले **प्रार्थना करके माँगो, तो प्रतीति कर लो** जिसके लिए तुमने प्रार्थना की **कि तुम्हें मिल गया**। इस कथन के विशाल दायरे के बावजूद हम उसे पाने की उम्मीद न करें जिस माना हमारे लिए अनुचित या अनुपयुक्त है। याकूब 4:2, 3 प्रार्थनाओं का उत्तर देने की परमेश्वर की प्रतिज्ञा के अपवाद बताता है:

> तुम लालसा रखते हो, और तुम्हें मिलता नहीं; इसलिये तुम हत्या करते हो, तुम डाह करते हो और कुछ प्राप्त नहीं कर पाते तो तुम झगड़ते और लड़ते हो। तुम्हें इसलिए नहीं मिलता, कि मांगते नहीं। तुम मांगते हो और पाते नहीं, इसलिए कि बुरी इच्छा से मांगते हो, ताकि अपने भोग-विलाप में उड़ा दो।

हो सकता है कि हमने किसी चीज़ के लिए प्रार्थना की हो परन्तु परमेश्वर ने हमें उससे बढ़िया दे दी हो। जब पौलुस ने परमेश्वर से तीन बार लगातार प्रार्थना की कि उसके ''शरीर में का काटा'' निकाल दिया जाए तो परमेश्वर का उत्तर एक अर्थ में यही था, ''नहीं, पौलुस, मेरे पास तेरे लिए इससे कोई और बढ़िया योजना है!'' (देखें 2 कुरि. 12:7-9)। पौलुस ने शालीनतापूर्वक उस विकल्प को मान लिया; चाहे उसे लगा कि उससे अधिक पीड़ा और बेचैनी हुई होगी। हमारी इच्छा परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध न हो। यीशु ने प्रार्थना की, ''... तौभी मेरी नहीं परन्तु तेरी ही इच्छा पूरी हो'' (लूका 22:42)। अपनी प्रार्थनाओं के उत्तर में हम परमेश्वर से चमत्कार करने की उम्मीद नहीं कर सकते। नया नियम पूरा हो जाने के साथ, चमत्कारों की कोई आवश्यकता नहीं रही। हमें दूसरों को मसीह में विश्वास में लाने के लिए चमत्कारों का नहीं बल्कि बाइबल का इस्तेमाल करना आवश्यक है।

आयत 24 उस व्यक्ति की तस्वीर दिखाती है जिसे अपनी प्रार्थना का उत्तर मिलने का इतना विश्वास है जैसे कि यह पहले ही हो चुका है। उसे ''विश्वास है कि जो कुछ वह कहता है हो जाएगा'' (11:23)। पहाड़ को हिला देने वाली योग्यता वाला विश्वास ऐसा ही है जिसका वर्णन यहां यीशु ने किया।

आयत 25. दूसरा, यीशु ने संकेत दिया कि अपनी प्रार्थनाओं का उत्तर पाने के लिए हम दूसरों को क्षमा करने को तैयार रहें।[33] **''जब कभी तुम खड़े हुए प्रार्थना करते हो तो यदि तुम्हारे मन में किसी के प्रति कुछ विरोध हो, तो क्षमा करो: इसलिये कि तुम्हारा स्वर्गीय पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा करे।''** हम याकूब 2:13 में चकित कर देने वाले नियम पर बहुत अधिक निर्भर न हों, ''दया न्याय पर जयवन्त होती है।'' यह शानदार प्रतिज्ञा है, परन्तु हमें इस आयत के पहले भाग को नहीं भूलना चाहिए, ''क्योंकि जिसने दया नहीं की, उसका न्याय बिना दया के होगा'' (याकूब 2:13)।

आयत 26. यीशु ने कहा, **''और यदि तुम क्षमा न करो तो तुम्हारा पिता भी जो स्वर्ग में है, तुम्हारा अपराध क्षमा न करेगा।''** यह बात मन में मैल रखने के विचार को डराने वाला बना देती है! यीशु के शब्द हमें मनुष्य के रूप में जहां तक हो सके दूसरों के प्रति दयालु होने को विवश करते हैं।

सुसमाचार के विवरणों में, यीशु ने यह कहते हुए ''मैं बलिदान नहीं परन्तु दया चाहता हूं'' दो बार होशे 6:6 की ओर इशारा किया (देखें मत्ती 9:13; 12:7)। यीशु के शानदार धन्यवचनों में यह बात मिलती है ''धन्य है वे, जो दयावंत हैं क्योंकि उन पर दया की जाएगी'' (मत्ती 5:7)। मत्ती 6:14, 15 भी हमें विश्वास दिलाता है कि परमेश्वर हमें अधिक क्षमा करेगा यदि हम दूसरों को क्षमा करते हैं। परमेश्वर के साथ सही ढंग से बात करना असम्भव है यदि किसी का मन दूसरों को क्षमा न करने से भरा है। जब हम क्षमा कर सकते हैं तो यह इस बात का प्रमाण है कि हमे मन परमेश्वर के साथ सही हैं। इसके अलावा क्षमा करने से इनकार करना क्षमा न किए जाने वाले व्यक्ति को अपने से बड़ा बना देना है।

यह आयत कई महत्वपूर्ण हस्तलेखों से विलुप्त है, और बहुत से लोग यह मानते हैं कि इसे मत्ती 6:15 से लिया गया है। ASV में इस आयत को तिरछा रखा गया है। अधिकतर संस्करणों में से इसे निकाल दिया गया है, परन्तु [NASB की तरह इसे हिन्दी में कोष्ठकों में रखा गया है - अनुवादक]। कोल का मानना था कि यह आयत सबसे सामान्य लिखने की ''गलती'' है। उसने ध्यान दिलाया कि आयत 26 मूल पाठ का भाग थी या नहीं, परन्तु 11:25 कहता है कि हम से दूसरों को क्षमा करने की उम्मीद की जाती है।[34] उद्धार चाहे परमेश्वर की करुणा पर निर्भर है परन्तु उसके अनुग्रह में बने रहने के लिए हमारे लिए उसकी आज्ञा मानना आवश्यक है। क्षमा उन बातों में से एक है जिन्हें मनपरिवर्तन (उद्धार पाने) के बाद हमें करना आवश्यक हैं, नहीं तो हम अपने उद्धार को खो सकते हैं। न्याय के दिन स्वर्ग में पिता के सामने पेश होने के समय, उसे कुछ लोगों को कहना पड़ेगा, ''क्षमा करना, परन्तु तुम ने तुम्हें ठोकर दिलाने वाले व्यक्ति को कभी क्षमा नहीं किया। तुमने अपने मन में घृणा पाल रखी। तुम्हें इन सब प्रेम करने वाली आत्माओं के साथ प्रवेश करने नहीं दिया जा सकता जिन्होंने क्षमा की मधुर आशीष को जानकर इसे जीया।''

यीशु के अधिकार पर प्रश्न (11:27-33)[35]

[27]वे फिर यरूशलेम में आए, और जब वह मन्दिर में टहल रहा था तो प्रधान याजक और शास्त्री और पुरनिए उसके पास आकर पूछने लगे, [28]''तू ये काम किस अधिकार से करता है? और यह अधिकार तुझे किस ने दिया है कि तू ये काम करे?'' [29]यीशु ने उनसे कहा, ''मैं भी तुम से एक बात पूछता हूँ; मुझे उत्तर दो तो मैं तुम्हें बताऊँगा कि ये काम किस अधिकार से करता हूँ। [30]यूहन्ना का बपतिस्मा क्या स्वर्ग की ओर से था या मनुष्यों की ओर से था। मुझे उत्तर दो।'' [31]तब वे आपस में विवाद करने लगे कि यदि हम कहें 'स्वर्ग की ओर से,' तो वह कहेगा, 'फिर तुम ने उसकी प्रतीति क्यों नहीं की?' [32]और यदि हम कहें, 'मनुष्यों की ओर से,' तो लोगों का डर है, क्योंकि सब जानते हैं कि यूहन्ना सचमुच भविष्यद्वक्ता था। [33]अत: उन्होंने यीशु को उत्तर दिया, ''हम नहीं जानते।'' यीशु ने उनसे कहा, ''मैं भी तुम को नहीं बताता कि ये काम किस अधिकार से करता हूँ।''

आयत 27. यीशु मन्दिर के एक ओसारे (बरामदे) पर टहल रहा था जब **प्रधान याजक और शास्त्री और पुरनिए उसके पास** आए। टहलते हुए उपदेश देने के लिए रब्बियों की यह सामान्य जगह थी। मन्दिर में दो बड़े रास्ते थे, तीस फुट ऊंचे कुरिन्थुस वाले खम्भों वाला सुलैमान

का ओसारा, और सफेद संगमरमर की चार कतारों वाले दक्षिण की ओर राजसी मठ, जिसका सात फुट घेरे और ऊंचाई तीस फुट थी। कुल मिलाकर ये 162 खम्भे थे।[36] यूनानी लोग भी सिखाने के लिए मन्दिर के ''ओसारों'' का इस्तेमाल करते थे; वास्तव में ''स्तोइकियों'' को *stoa* (*स्टोआ*) जिसमें उनका संस्थापक ज़ीनो उपदेश दिया करता था।

आयत 28. प्रधान याजकों, शास्त्रियों और पुरनियों ने उससे पूछा, **''तू ये काम किस अधिकार से करता है? और यह अधिकार तुझे किस ने दिया है कि तू ये काम करे?''** यीशु कौन से ''काम'' कर रहा था जिन्हें करने के लिए याजकों के विशेष ''अधिकार'' की आवश्यकता थी? बिना अधिकार के किसी ने मन्दिर को शुद्ध नहीं करना था, लेन देन करने वालों को नहीं निकालना था और उन्हें दण्ड नहीं देना था। प्रधान याजक, शास्त्री और पुरनिये यह जानना चाह रहे थे कि उसे मन्दिर को शुद्ध करने और उपदेश के लिए मन्दिर की भूमि का इस्तेमाल करने का अधिकार किसने दिया। यीशु कोई याजक नहीं था, क्योंकि वह लेवी के नहीं बल्कि यहूदा के गोत्र में से था जिसमें से याजक नहीं हो सकता था (देखें इब्रा. 7:14)। उसने अपनी कार्यवाहियों के लिए (लेन देन करने वालों की तरह) प्रधान याजकों से अनुमति नहीं ली थी। न ही वह कोई सरकारी अधिकारी था। फिर भी यह उसके ''पिता का घर'' था (लूका 2:49; यूहन्ना 2:16), जो कि ऐसी अभिव्यक्ति है जिसका इस्तेमाल यूहन्ना 14:2 में स्वर्ग के लिए भी हुआ है। स्वर्गीय पिता के पुत्र से यह पूछना मूर्खता वाली बात थी कि उसे अधिकार कहां से मिला था, विशेषकर जब उसके आश्चर्यकर्म उसके ईश्वरीय अधिकार का प्रमाण थे।

प्रधान याजकों ने, जो अपने आपको मन्दिर के मालिक समझते थे, यीशु को घुसपैठिये के रूप में देखा। आज बहुत से लोग बाइबल की शिक्षा को मानने से तब तक इनकार करते हैं जब तक कोई मनुष्यों की बनाई कांउसिल के अधिकार से ''ऑरडेन'' हुआ हो। सच अपने आप में अधिकार है और मनुष्यों की ठहराई या नियुक्त की कोई धर्मसत्ता इसे अधिक या कम सच नहीं बना सकती है। यीशु का संदेश ही अधिकार वाला होता था। ''वे उस के उपदेश से चकित हो गए क्योंकि उसका वचन अधिकार सहित था'' (लूका 4:32)। निष्कपट मनों द्वारा उस अधिकार को मान लेना लोगों को उसकी ओर खींचता है। उस अधिकार को नकारने ने फरीसियों को दोषी ठहराया। यूहन्ना के बपतिस्मे को नकार उन्होंने ''परमेश्वर के अभिप्राय को अपने विषय में टाल दिया'' (लूका 7:30)। फरीसियों को कोई भी बात सच्ची नहीं लगती थी जब तक वह उनकी ओर से न कही गई हो।

यूहन्ना 7:17 कहता है, ''यदि कोई परमेश्वर की इच्छा पर चलना चाहे, तो वह इस उपदेश के विषय में जान जाएगा कि यह परमेश्वर की ओर से है या मैं अपनी ओर से कहता हूँ'' (NRSV)। परमेश्वर की सच्चाई को ढूंढ़ने और जानने का प्रण जीवन का सबसे बढ़िया प्रण है। यहूदियों का यीशु और उसकी शिक्षाओं को नकारना समझदारी की नहीं बल्कि ढिठाई की बात थी। जो व्यक्ति आज्ञा मानने को तैयार नहीं है वह आत्मिक ज्ञान पाने के योग्य नहीं है।

आयतें 29, 30. यीशु ने उन्हें बताया कि वह उनके प्रश्न का उत्तर दे देगा यदि वे उसके प्रश्न का उत्तर दे दें। उसने उनसे पूछा, **''यूहन्ना का बपतिस्मा क्या स्वर्ग की ओर से था या मनुष्यों की ओर से था?''** यीशु ने इन अगुओं को चुनौती भरे प्रश्न के साथ उत्तर दिया, परन्तु यह उन्हें फंसाने के लिए नहीं था। बल्कि उसका प्रश्न समय हाथ से निकल जान से पहले पहले

अपने अंधेपन को देखने में सहायता के लिए था। यदि वे यूहन्ना को नबी मान लेते तो उन्होंने यीशु को मसीहा मान लेना था क्योंकि यूहन्ना ने बताया था कि वह मसीहा ही है (यूहन्ना 1:29)। फरीसियों और व्यवस्थापकों को छोड़ सब लोग यूहन्ना के पास डुबकी के लिए जाते थे (लूका 7:29, 30)।

आयतें 31, 32. यीशु को दुविधा में डालने के लिए दूसरे हर प्रयास की तरह यह प्रश्न भी इसी मंशा से किए गए। एकमात्र तर्कसंगत उत्तर देने को तैयार न होकर उन्होंने अपने आपको बड़ी खराब स्थिति में पाया। यदि वे साफ मन और समझदार होते तो वे केवल इतना जवाब देना था, ''**स्वर्ग की ओर से।**'' परन्तु उन्हें यह पता था कि यीशु उन्हें यह पूछकर परेशान करेगा, ''**फिर तुम ने उसकी प्रतीति क्यों नहीं की?**'' यदि वे यह कहते, ''**मनुष्यों की ओर से**'' तो क्रुद्ध भीड़ ने उन्हें पथराव कर देती। क्योंकि लोग **जानते हैं कि यूहन्ना सचमुच भविष्यद्वक्ता था** (देखें लूका 20:6)।

आयत 33. इन धार्मिक हाकिमों के लिए किसी धार्मिक विषय पर अज्ञानी होने को मान लेना अपमानित होने वाली बात थी; परन्तु उन्होंने यह कहकर झूठ बोला, ''**हम नहीं जानते।**'' उनके जवाब से सबके सामने इन अधिकारियों का कपट सामने आ गया, और इससे लोगों को पता चल गया कि यीशु को अधिकार वहीं से मिला था जहां यूहन्ना को मिला था।

यीशु ने उत्तर दिया, ''**मैं भी तुम को नहीं बताता कि ये काम किस अधिकार से करता हूँ।**'' उसे पता था कि उनके प्रश्न का सीधा उत्तर देने का कोई मतलब नहीं है क्योंकि वे सच्चाई की खोज में नहीं थे बल्कि वे तो उन्हें फंसाने का तरीका ढूंढ़ रहे थे। मरकुस में यह लिखी आठ में से सातवीं बारी है जब विरोधियों ने यीशु पर हमला किया या उसे फंसाने की कोशिश की और उसने उन्हें उत्तर दिया।[37] जब लोग सच्चाई को नहीं सुनते तो अच्छा यह होता है कि बातचीत बंद करके सच्चाई के ''मोतियों को सूअरों'' के आगे डालना बंद कर दिया जाए, जो उन्हें केवल पैरों तले लताड़ेंगे (मत्ती 7:6)। यीशु हम से संसार को सुसमाचार सुनाने का परिश्रम करते हुए समझदारी का इस्तेमाल करने के उम्मीद करता है।

प्रासंगिकता

यीशु हमारा महाराजा (11:1-11)

हमारे वचन 11:1-11 में, यीशु यरूशलेम में अपना अंतिम प्रवेश कर रहा था, जहां उसने अपनी मृत्यु की भविष्यद्वाणियों को पूरा करना था। सुसमाचार के चारों विवरण नगर में उसके इस विजयी पहुंच की बात करते हैं (देखें मत्ती 21:1-11; लूका 19:28-40; यूहन्ना 12:12-19)।

उस रविवार की सुबह हमारा प्रभु और उसके प्रेरित बैतनिय्याह और बैतफ़गे में से होते हुए यरूशलेम की ओर गए, जहां वे जैतून पहाड़ की पूर्वी ढलान पर चलते हुए पेड़ों के पास पहुंचे (देखें मरकुस 11:1)। इसका अर्थ यह हुआ कि वे यरूशलेम से लगभग दो मील दूर थे।

यरूशलेम में इस प्रवेश के विवरण को दो भागों में बांटा गया है। पहला भाग उस तैयारी के बारे में बताता है जो यीशु के नगर में जाने के लिए की गई थी। दूसरा भाग विजयी प्रवेश को दिखाता है। यीशु जो कि जहां हो सकता आम लोगों के बीच प्रचार से बचता था, नगर में

अन सजे गधे पर सवार होकर यहूदी अवसरों में सबसे महत्वपूर्ण एक अवसर पर सबसे भव्य प्रदर्शन में गया। नगर में प्रवेश करने पर उसे उन लोगों की ओर से जिन्होंने उसे अपना राजा घोषित किया, सम्मान दिया गया। महिमा के प्रभु ने अपने जाति को उसे यहूदियों के राजा के रूप में मानने का अवसर दिया, चाहे ईश्वरीय समझ के द्वारा उसे यह पता था कि शीघ्र ही उसे ठुकराकर मार दिया जाना था।

यह घटना हमें यीशु के राजा होने का एक अलग विचार देती है। वह राजा के रूप में आया, राजा के रूप में उसे स्वीकार किया गया, और राजा की तरह उसने व्यवहार किया, चाहे उसे पता था कि शीघ्र ही उसे क्रूस पर चढ़ा दिया जाना था। यरूशलेम में उसके प्रवेश को देखकर, हमें उसके राजा होने को मानकर उसकी सच्ची आराधना करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए, जिसका वह हक्कदार है। आइए हम अपने राजा यीशु मसीह के लिए परमेश्वर की महिमा करें!

1. *ज्ञान में वह अंतरयामी है।* यीशु न केवल हमारा राजा है बल्कि वह परमेश्वर का नबी भी है। उसने अपने दो चेलों को गांव (में अपने से पहले भेज दिया शायद बैतफ़गे; देखें 11:1)। वहां उन्हें गदही का एक बच्चा बंधा हुआ मिलना था, और उन्होंने उसे खोलकर लाना था (11:2)। यह वह बच्चा था जिस पर पहले कभी किसी ने सवारी नहीं की थी। उसने आगे कहा कि जब वे उस बच्चे को खोलने लगेंगे तो उनसे किसी ने पूछना था कि वे क्या कर रहे हैं। पूछे जाने पर उन्होंने वही उत्तर देना था जो उन्हें बताया गया था: ''प्रभु को इसका प्रयोजन है''; फिर उसके मालिक ने उन्हें चेलों को खोलकर देना था (11:3)।

यीशु को कैसे पता था कि ये ये बातें होंगी? यदि इन प्रश्नों का उत्तर यह अनुमान है ''वह उस आदमी से पहले मिल चुका था और उसने ये प्रबन्ध किए थे,'' तो हमें यह पूछना पड़ेगा, ''यीशु ने ये प्रबन्ध कब किया होगा?'' काफ़ी समय से वह इस इलाके में नहीं आया था। इस घटना के बहुत पहले क्या उसने इस आदमी को बता रखा था कि फलां फलां दिन वह फलां फलां जगह पर अपनी गदही के बच्चे को बांध दे? क्या उस आदमी को पता था कि यीशु के दो चेलों के आकर उससे यह कहने पर कि ''प्रभु को उसका प्रयोजन है,'' उन चेलों को अपना जानवर दे देना है?

यह सब हो सकता है, परन्तु यह मान लेने से कहीं अधिक वास्तविक यह है कि ईश्वरीय ज्ञान से प्रभु को होने वाली घटनाओं की हर बात का पता था। यीशु ने अपने पूर्वज्ञान को उस स्वामी की स्वतन्त्र इच्छा के बाद, चेलों की सुविचारित कार्यवाहियों, या पास खड़े लोगों की निजी पसंद में बांधा बने बिना बिल्कुल सही काम किया।

गधे को लेने की यह घटना और प्रमाण देती है कि यीशु अंतरयामी राजा है जो उन्हें छुड़ाने के लिए आया था जिन्होंने उस पर विश्वास लाना था। मरकुस बताता है कि घटनाएं बिल्कुल वैसे ही हुईं जैसे यीशु ने भविष्यद्वाणी की थी (11:4-6)।

2. *वह दयावान है।* लूका ने कहा, ''जब वह निकट आया तो नगर को देखकर उस पर रोया'' (लूका 19:41)। स्पष्टतया यीशु जैतून पहाड़ की चोटी से आगे निकल गया था। उसके सामने यरूशलेम नगर दूर तक फैला हुआ था। वह जानता था कि यह नगर उसके साथ क्या करने वाला है। उनके बीच उद्धार का एक अवसर रखा गया था, परन्तु उन्होंने उसे ठुकराकर, उसे क्रूस पर चढ़ा दिया। दु:ख के अपने आंसुओं और अभिव्यक्तियों के द्वारा उसने कहा,

> क्या ही भला होता कि तू; हां, तू ही, इसी दिन में कुशल की बातें जानता, परन्तु अब वे तेरी आंखों से छिप गई हैं। क्योंकि वे दिन तुझ पर आएंगे कि तेरे बैरी मोर्चा बान्धकर तुझे घेर लेंगे, और चारों ओर से तुझे दबाएंगे; और तुझे और तेरे बालकों को जो तुझ में हैं, मिट्टी में मिलाएंगे, और तुझ में पत्थर पर पत्थर भी न छोड़ेंगे; क्योंकि तू ने उस अवसर को जब तुझ पर कृपा दृष्टि की गई न पहचाना[38] (लूका 19:42-44)।

जहां पर यीशु खड़ा था वहां से वह मन्दिर, बाज़ारों, घरों और आराधनालयों को देख सकता था जो नष्ट हो जाने थे क्योंकि उन्होंने मसीहा को ठुकरा दिया था। जब यरूशलेम के नष्ट होने पर, पत्थर के ऊपर पत्थर भी नहीं रहना था (देखें मरकुस 13:2)।

सेवा करते हुए और प्रचार करते हुए यहां और अन्य जगहों में यीशु के कोमल हृदय को देखा जा सकता है। परन्तु यहां पर उसके आंसुओं ने तो बिल्कुल उसके मन को ही दिखा दिया। वह हमारा उद्धार करने के लिए आया और उसका मन सब लोगों के लिए प्रेम से भरा हुआ था। वह नहीं चाहता था कि किसी का भी नाश हो।

3. *वह ईश्वरीय है।* यीशु उन भविष्यद्वाणियों को जो मसीहा के आने के विषय में की गई थी, पूरा करने के लिए राजा बनकर आया। भविष्यद्वाणी के वचन में गदहे का दर्शन पहले ही दिया गया था (मत्ती 21:4, 5)।

गधी के इस बच्चे पर जिस पर कभी कोई नहीं चढ़ा था, नगर की ओर जाने के लिए जब यीशु ने अपनी यात्रा आरम्भ की, तो कुछ लोगों ने ''अपने कपड़े मार्ग में बिछाए,'' जबकि ''औरों ने खेतों में से डालियां काट काट कर फैला दीं'' (11:8)। इन भावों से वह सबसे बड़ा सम्मान और स्वागत दिखाया गया, जो साधारण लोग अचानक बताए जाने पर दिखा सकते थे। यीशु के सामने सुन्दर ढंग से सजाए गए झण्डे नहीं थे। उसके आस पास कोई बूटेदार बिल्ला नहीं था।

यह भीड़ नगर और गलील से आए चेलों की भीड़ थी, जो यीशु के आगे पीछे ऊंचे शब्द से पुकारते हुए जा रही थी:

> होशाना! धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है! हमारे पिता दाऊद का राज्य जो आ रहा है; धन्य है! आकाश में होशाना! (11:9, 10)।

ये शब्द मसीहा से सम्बन्धित थे जिनका इस्तेमाल उनमें से अधिकतर लोग यीशु की आराधना के लिए कर रहे थे, क्योंकि वह परमेश्वर का मसीहा था। वे अपने आप को प्रशंसा को रोक नहीं पाए।

जुलूस यरूशलेम के अंदर चला गया। कुछ फरीसियों ने यीशु के पास आकर कहा, ''हे गुरु अपने चेलों को डांट'' (लूका 19:39)। यहूदी अगुवे ईर्ष्या से भर गए थे और उन्हें लगा कि यीशु के चेले उसके इस स्वागत के लिए कुछ अधिक ही कर रहे हैं। यीशु ने उनसे कहा, ''मैं तुम से कहता हूं, यदि ये चुप रहें, तो पत्थर चिल्ला उठेंगे'' (लूका 19:40)। वह यह दिखा रहा था, ''यदि मेरे विषय में सच्चाई पता चल जाए तो सारी पृथ्वी के, जीवित और मृत, सब मेरी आराधना करेंगे!''

मत्ती ने लिखा, ''... सारे नगर में हलचल मच गई, और लोग कहने लगे, 'यह कौन है?'

लोगों ने कहा, 'यह गलील के नासरत का भविष्यद्वक्ता यीशु है''' (मत्ती 21:10, 11)। अपनी सेवकाई के विषय को ध्यान में रखते हुए यीशु लोगों को मन्दिर तक ले गया (मरकुस 11:11)। फिर, ''चारों और सब वस्तुओं को देखकर'' और यह समझते हुए कि मन्दिर में क्या होने वाला है, ''बारहों के साथ बैतनिय्याह गया, क्योंकि सांझ हो गई थी'' (11:11)। अपने क्रूस पर चढ़ाए जाने से पहले वाले अंतिम रविवार को यीशु ने बैतनिय्याह में जाकर वहां अपने मित्रों के साथ शाम बिताई।

निष्कर्ष: यीशु किस प्रकार का राजा था और है ? विशेषकर, यह विजयी प्रवेश उसके विषय में क्या कहता है ? यह कहता है कि वह राजाओं का राजा है। वह परमेश्वर का विश्वासयोग्य नबी है। जीवन के हर पहलू में यानी उसके जन्म में, उसके प्रतिदिन के जीवन में, उसके आश्चर्यकर्मों में, और यरूशलेम में उसके जाने में हम उसके परमेश्वर होने का प्रमाण देख सकते हैं। वह बिना प्रमाण के नहीं आया। वह दयावान राजा है। वह यरूशलेम में उन लोगों के लिए मरने के लिए गया जो उसे क्रूस पर चढ़ाने वाले थे। वह इस बात पर रोया कि यरूशलेम उसे ठुकराकर अपने आपको नष्ट कर रहा था। वह ईश्वरीय राजा है, यानी राज्य का आधार बनाने और स्वर्ग के राज्य को लाने के लिए पिता का भेजा हुआ।

विजयी प्रवेश किसी महल में नहीं बल्कि मन्दिर में खत्म हुआ, जहां यीशु ने अपनी सेवकाई जारी रखनी थी। महिमा से भरे प्रवेश से यीशु की सेवकाई या परमेश्वर की सनातन मंशा में उसके योग में कोई रुकावट नहीं डाली। वह हमें अनन्त जीवन दिलाने के लिए अनन्त नगर में आया था।

जाने दिया गया अवसर (11:12-14)

रविवार दोपहर को यीशु एक शाही जुलूस में यरूशलेम में गया था। गधे पर जिस पर पहले कभी कोई नहीं चढ़ा था, सवार होकर उसे लोगों की बड़ी भीड़ की पुकारों के साथ ग्रहण किया गया था, जो ऊंचे शब्द से पुकार रहे थे, ''होशाना! धन्य है वह जो प्रभु के नाम से आता है!'' (11:9)। वह अपने प्रेरितों को और दूसरे चेलों को मन्दिर तक ले गया था, मन्दिर में प्रवेश करने के बाद इधर उधर यह देखते हुए कि वहां क्या हो रहा है (11:11), वह और उसके प्रेरित रात काटने के लिए बैतनिय्याह में चले गए थे (11:11)। शायद वह वहां पर मारथा, मरियम और लाज़र के साथ रहे थे; नहीं तो उन्होंने खुले आकाश में रात बिताई होगी।

रविवार सुबह दिन चढ़ने से पहले वे बैतनिय्याह से निकलकर दो मील दूर फिर से यरूशलेम में प्रचार करने और दिन में दिए जाने वाले उपदेश के लिए चले गए। जिस रास्ते से वे जा रहे थे वहां थोड़ी आगे अंजीर का एक पेड़ था जिस पर पत्ते लगे हुए थे; और इस पर यीशु की नज़र पड़ी। एक ओर मुड़ते हुए, ''वह ... निकट गया कि क्या जाने उसमें कुछ पाए: पर पत्तों को छोड़ कुछ न पाया; क्योंकि फल का समय न था'' (11:13)।

आदर्श रूप में जब अंजीर के पेड़ पर पत्ते लगे हों तो यह इस बात का विज्ञापन दे रहा होता है, ''मुझ पर अंजीर लगे हैं। आओ और उतार लो।'' यहां पर, चाहे पेड़ पर पत्ते तो लगे हुए थे, परन्तु कोई अंजीर नहीं मिला। हमारा प्रभु फल रहित पेड़ के पास आया था। हरे-हरे पत्तों और मज़बूत टहनियों के साथ यह फलदार लग रहा था; इसमें जीवन का हर संकेत था, परन्तु यह बिल्कुल फल से रहित था। इसमें पत्तियां तो थीं परन्तु फल नहीं था।

यीशु ने उससे कहा, ''अब से कोई तेरा फल कभी न खाए!'' (11:14)। मरकुस ने लिखा, ''और चेले सुन रहे थे'' (11:14)। पेड़ को श्राप देते हुए यीशु ने प्रेरितों के लाभ के लिए ऊंचे शब्द से कहा होगा। इस अभिशाप से पेड़ उसी समय सूख गया (देखें मत्ती 21:19)।

अंजीर के पेड़ को यह श्राप देना और सूअरों के झुण्ड में दुष्टात्माओं को भेज देना (मरकुस 5:1–20) सुसमाचार के विवरणों में बताए गए न्याय करने के यीशु के केवल दो आश्चर्यकर्म हैं। इन दो असामान्य घटनाओं का हम क्या करें? हम पक्का मान सकते हैं कि कि यीशु ने इन दोनों मामलों में जो कुछ किया वह ईश्वरीय कारणों से किया।

अंजीर के पेड़ की इस परिस्थिति में यीशु की कार्यवाहियों से उस न्याय को दिखाया गया जो अंत में उन लोगों पर आना आवश्यक है जिन्होंने फल लाने के अपने अवसरों को नज़रअंदाज़ कर दिया है। यीशु ने यहां पर बताई गई सच्चाई को दोहराया जब उसने कहा, ''जो डाली मुझ में है और नहीं फलती, उसे वह काट डालता है; और जो फलती है, उसे वह छाँटता है ताकि और फले'' (यूहन्ना 15:2)। अपने बंजर होने और फलरहित होने में यह पेड़ संसार को ''गवाए हुए अवसर'' की दु:खद कहानी समझा रहा था।

1. इस पेड़ के पास *सुनहरी अवसर* था। यह अंजीर के बीज से हरा भरा हुआ था। यह भूमि में से अंकुर के रूप में फूटकर, एक बड़े वृक्ष में बदल गया था। भूमि का स्वामी इस पेड़ की क्षमता से प्रसन्न हुआ होगा।

जब हम पेड़ पर इस्राएल के संकेत रूप में विचार करते हैं तो हम एक जाति को देखते हैं जिसे परमेश्वर की ओर से संसार के दूसरे लोगों में उसका प्रतिनिधि बनने के लिए चुना गया था। इस जाति को कितना अच्छा अवसर मिला था! इस पर यह धन्यवचन लागू होता था: ''क्या ही धन्य है वह जाति जिसका परमेश्वर यहोवा है, और वह समाज जिसे उस ने अपना निज भाग होने के लिये चुन लिया हो!'' (भजन 33:12)। इस्राएलियों (यहूदियों) को सर्वशक्तिमान परमेश्वर का आत्मिक धन और मीरास पाने के लिए चुना गया था। उनसे कहा गया था, ''तुम मेरी प्रजा ठहरोगे और मैं तुम्हारा परमेश्वर ठहरूंगा'' (यिर्म. 30:22)। परमेश्वर ने खुद उन्हें वचन दिया था, ''और मैं तुम्हारे बीच अपना निवास-स्थान बनाए रखूँगा, और मेरा जी तुम से घृणा नहीं करेगा। और मैं तुम्हारे मध्य चला फिरा करूँगा, और तुम्हारा परमेश्वर बना रहूँगा, और तुम मेरी प्रजा बने रहोगे'' (लैव्य. 26:11, 12)।

इस पेड़ को और इस जाति को सुनहरी अवसर दिए गए थे। सबसे बढ़िया अवसर जो किसी को भी मिल सकता है, वह परमेश्वर की संगति में रहने का अवसर है।

2. समय के साथ इस पेड़ को *बड़ा होने का अवसर* भी मिला था। बढ़कर यह पेड़ इतना बड़ा हो गया था कि अपने मौसम में स्वामी को आनन्द देने के लिए, अंजीरों से भरा हो सकता था। इस पेड़ पर पत्ते थे जो इस बात का संकेत था कि इस पर अंजीर भी लगे हैं, परन्तु यह फल रहित था।

इस पेड़ की कहानी इस्राएल जाति की कहानी है। यूहन्ना को यीशु के लिए यह लिखना पड़ा, ''वह अपने घर आया और उसके अपनों ने उसे ग्रहण नहीं किया'' (यूहन्ना 1:11)। जब मसीहा ने यरूशलेम में प्रवेश किया, तो उस जाति ने बचाने के लिए वह आया था, जिसने उसके विरुद्ध होकर उसे क्रूस पर भेज दिया। क्रूस पर, ''प्रधान याजक भी शास्त्रियों और पुरनियों

समेत ठट्ठा कर करके कहते थे, 'ने इस औरों को बचाया, और अपने को नहीं बचा सकता। यह तो ''इस्राएल का राजा है''। अब क्रूस पर से उतर आए तो हम उस पर विश्वास करें''' (मत्ती 27:41, 42)। जब वह अवसर आया, तो यह क्षण उनके लिए यीशु को मसीहा के रूप में ग्रहण करने और उसे अपने उद्धारकर्त्ता और प्रभु के रूप में मुकुट पहनाने का था, पर इसके बजाय वे चिल्लाने लगे, '''वह क्रूस पर चढ़ाए जाए' ... 'इसका लहू हम पर हमारी संतान पर हो!''' (मत्ती 27:23-25)।

यीशु ने अपने चुने हुए लोगों को जातियों के बीच गवाही बनने और फल देने को कहा, परन्तु वह फल रहित थे। उन्होंने पुराने नियम की पुस्तकों को पढ़ा था और उनका अध्ययन किया था, परन्तु उन्हें मसीहा का संदेश पता नहीं चला। संसार की जातियों के बीच में खड़े इस्राएली वे थे जिन पर पत्ते तो थे पर फल नहीं था।

3. पेड़ पर फल न होना *हाथ से निकले हुए अवसर* का कारण बन गया। इस पेड़ को समय में परमेश्वर के पुत्र को खिलाने का समय था, परन्तु उसने ''पत्तों को छोड़ कुछ न पाया'' (11:13)।

न्याय का समय सब लोगों के लिए आएगा, बिल्कुल वैसे ही जैसे अंजीर के इस पेड़ और परमेश्वर की जाति के लिए आया। परमेश्वर के पुत्र ने अंजीर के पेड़ से कहा, ''अब से कोई तेरा फल कभी न खाए!'' (11:14)। दस कुंवारियों के दृष्टांत में, दूल्हे ने कहा, ''मैं तुम से सच कहता हूं, मैं तुम्हें नहीं जानता'' (मत्ती 25:12)। तोड़ों के दृष्टांत में निकम्मे दास के विषय में स्वामी ने कहा,

> वह तोड़ा उससे ले लो, और जिसके पास दस तोड़े हैं, उसको दे दो। क्योंकि जिस किसी के पास है, उसे और दिया जाएगा; और उसके पास बहुत हो जाएगा: परन्तु जिसके पास नहीं है, उससे वह भी जो उसके पास है, ले लिया जाएगा (मत्ती 25:28, 29)।

न्याय के दिन प्रतापी राजा सिंहासन के बाईं ओर के लोगों के लिए कहेगा, ''ये अनन्त दण्ड भोगेंगे परन्तु धर्मी अनन्त जीवन में प्रवेश करेंगे'' (मत्ती 25:46)।

निष्कर्ष: जीवन में मिले सबसे कीमती अवसर को गंवाने से बढ़कर बुरी बात और कोई नहीं हो सकती। जब किसी पेड़ पर फल नहीं लगता तो यह आम तौर पर इसलिए होता क्योंकि वह सूख चुका है। यही सच्चाई लोगों और जातियों पर लागू होती है। जब हम फल ढूंढ़ने लगते हैं और वह नहीं मिलता, तो हमें पक्का पता होता है कि वह सूख गया है। सूखे पेड़ों की तरह मुर्दा चेलों पर कोई फल नहीं लगता।

यीशु ने कहा, ''मैं दाखलता हूँ: तुम डालियाँ हो। जो मुझ में बना रहता है और मैं उसमें, वह बहुत फल फलता है, क्योंकि मुझ से अलग होकर तुम कुछ भी नहीं कर सकते'' (यूहन्ना 15:5)। हम में से हर किसी को यीशु के साथ सम्बन्ध बनाने का एक सुनहरी अवसर मिला है। यीशु के साथ सम्बन्ध से पोषण, ईश्वरीय ऊर्जा और फलदायक जीवन मिलता है। यदि किसी चेले का यीशु के साथ जीवन को बनाए रखने वाला सम्बन्ध नहीं है तो वह केवल सूखी झाड़ी का ढेर बनने के योग्य है। यीशु ने कहा, ''यदि कोई मुझ में बना न रहे, तो वह डाली के समान फेंक दिया जाता, और सूख जाता है; और लोग उन्हें बटोरकर आग में झोंक देते हैं, और वे जल

जाती हैं'' (यूहन्ना 15:6)।

जब हमारा पिता हमें देखे और पाए कि हम बहुत सा फल दे रहे हैं तो उसे बड़ा अच्छा लगता है। यीशु ने कहा, ''मेरे पिता की महिमा इसी से होती है कि तुम बहुत सा फल लाओ, तब ही तुम मेरे चेले ठहरोगे'' (यूहन्ना 15:8)।

भक्ति का अर्थ (11:15-19)

अपने विजयी प्रवेश के बाद जब यीशु मन्दिर में पहुंचा तो उसने उस पवित्र स्थान में जो कुछ हो रहा था उसे चारों ओर देखा और फिर ''बारहों के साथ बैतनिय्याह गया'' (11:11)। उस रविवार की शाम से जो कुछ उसने देखा उससे वह इतनी बुरी तरह से प्रभावित हुआ होगा कि उसने सोमवार को मन्दिर में लौटने पर, पहला काम परमेश्वर की सेवा में इसकी सही जगह को बहाल करने का निर्णय दिया।

स्पष्टतया तीन साल पहले अपनी सेवकाई के आरम्भ में उसने मन्दिर को शुद्ध किया था (यूहन्ना 2:12-17); और अब अपनी सेवकाई के अंत में उसके लिए मन्दिर को फिर से शुद्ध करना आवश्यक हो गया था। मन्दिर को इसके सही इस्तेमाल के लिए सुधारने की ये घटनाएं उसकी सेवकाई के बुक एंड (पुस्तक अवलंब) के जैसी थीं। संसार में अपने मिशन के भाग के रूप में, वह मन्दिर को इसके असली स्वामी अर्थात अपने पिता को लौटना चाहता था। वह इस पवित्र स्थान की भक्ति और आदर बहाल करना चाहता था।

1. *परमेश्वर की सच्ची आराधना के लिए भक्ति आवश्यक है।* यह यीशु की बड़ी चिंता थी। उसने मन्दिर के मूल अर्थ और उद्देश्य की बात की। यशायाह 56:7 और यिर्मयाह 7:11 में से उद्धृत करते हुए, उसने कहा, ''क्या यह नहीं लिखा है कि मेरा घर सब जातियों के लिये प्रार्थना का घर कहलाएगा? ...'' (मरकुस 11:17)।

परमेश्वर अपने लोगों से क्या चाहता था? अपने मन्दिर यानी उस स्थान के लिए जहां उसके नाम की आराधना की जानी थी, उसके दिमाग में एक सुन्दर योजना थी। एक सच्चे परमेश्वर की आराधना करने के लिए इस्राएलियों को संसार की सब जातियों की अगुआई करनी आवश्यक थी। अपने नबी यशायाह के द्वारा यहोवा ने पुराने नियम के मन्दिर के इस मुख्य उद्देश्य को बताया:

> परदेशी भी जो यहोवा के साथ इस इच्छा से मिले हुए हैं कि उसकी सेवा टहल करें और यहोवा के नाम से प्रीति रखें और उसके दास हो जाएं, जितने विश्रामदिन को अपवित्र करने से बचे रहते और मेरी वाचा को पालते हैं, उनको मैं अपने पवित्र पर्वत पर ले आकर अपने प्रार्थना के भवन में आनन्दित करूंगा; उनके होमबलि और मेलबलि मेरी वेदी पर ग्रहण किए जाएंगे; क्योंकि मेरा भवन सब देशों के लोगों के लिये प्रार्थना का घर कहलाएगा (यशा. 56:6, 7)।

यशायाह की भविष्यद्वाणी परमेश्वर की आराधना के चार पहलुओं को दिखाती है। पहला आराधना का *मूल,* आज्ञाकारी मन का होना आवश्यक था। दूसरा, आराधना की *कार्यवाही* परमेश्वर की वाचा के निर्देशों के साथ मेल खाती होनी आवश्यक है। तीसरा, आराधना की *स्वीकृति* परमेश्वर की ओर से होनी आवश्यक थी जो कि आराधना का ग्रहण करने वाला है यानी

इसे उसकी नज़र में ग्रहणयोग्य होनी आवश्यक है। चौथा, निष्कपट अर्थात आज्ञा मानने वाले आराधकों के लिए आराधना का *अनुभव* अच्छा होना था।

यीशु को मन्दिर में ऐसी आराधना होते हुए नहीं दिखी। इसके बजाय उसने व्यवसायिक हो चुकी, औपचारिक आराधना देखी जिसमें मन और आज्ञा मानना नहीं था। वहां हो रही आराधना में से परमेश्वर गायब था। याजक लोगों से परमेश्वर की आराधना के लिए नित्य अपमान करने की ओर ले जा रहे थे। जो कुछ हो रहा था उससे यीशु का मन बहुत दु:खी हुआ, जिस कारण वह इसके विरोध में चिल्ला उठा।

2. *परमेश्वर के लोगों से हमारे बर्ताव का ढंग भक्ति का आवश्यक भाग है।* दूसरों के साथ दुर्व्यव्यवहार यीशु की डांट का बड़ा भाग था। जब ''वह मन्दिर में गया'' तो ''वहाँ जो लेन-देन कर रहे थे उन्हें बाहर निकालने लगा, और सर्राफों के पीढ़े और कबूतर बेचनेवालों की चौकियाँ उलट दीं'' (11:15)।

फसह को मनाने के लिए सैकड़ों आराधक दूर-दूर से आते थे। उनके लिए अपने साथ बलिदान की भेंटें लेकर आना कठिन होता होगा। इसलिए यात्रियों के लिए मन्दिर के बाहरी अहाते में बलिदान किए जाने वाले मेमने या पक्षी खरीदने पर प्रबन्ध किया जाता था। इसके अलावा, मन्दिर का कर, यहूदी सिक्के में चुकाया जाना आवश्यक था, और बाहर से आए यहूदियों को यहूदी मुद्रा के लिए अपनी विदेशी मुद्रा का लेन देन करना पड़ता होगा। ऐसी आवश्यकताओं पर ध्यान रखा जाता था; परन्तु धार्मिक अगुवे उन लोगों का जिनके बारे में उन्हें लगता था कि इन सेवाओं की आवश्यकता है, अनुचित लाभ उठा रहे थे। जो बात यात्रियों की सुविधा के लिए होनी चाहिए थी वह वसूली और लूट का माध्यम बन गई। परमेश्वर के याजक उसकी प्रजा के साथ गलत व्यवहार कर रहे थे।

यीशु ने अपना क्रोध ज़ोरदार ढंग से ऐसी ही खतरनाक गलती के विरुद्ध जताया था। उसने जानवरों के व्यापारियों को निकाल दिया और लेन देन करने वालों की चौंकियां उलटा दीं।

3. *भक्ति परमेश्वर की बातों से जुड़ी है।* यीशु ने ''मन्दिर में से किसी को बरतन लेकर आने जाने न दिया'' (11:16)। लोग बाहरी अहाते यानी मन्दिर के अन्यजातियों के आंगन में पूर्व की ओर या पश्चिम की ओर आते जाते रहते होंगे। यीशु के अनुसार भक्ति में परमेश्वर की चीज़ों के लिए उचित सम्मान होना शामिल था। मन्दिर के पवित्र होने को अनदेखा किया जा रहा था जब इसका इस्तेमाल पूरी तरह से सांसारिक उद्देश्य के लिए किया जा रहा था।

निष्कर्ष: मन्दिर के शुद्ध किए जाने के सम्बन्ध में बड़ा सम्बन्ध ''भक्ति'' है। बाइबल इस बात की मांग करती है कि हम परमेश्वर के प्रति भक्ति और आदर दिखाएं।

समाज के अगुवे यदि शिक्षा को अनावश्यक बना दें और स्कूल का इस्तेमाल केवल मनोरंजन के लिए करें, तो स्कूल का उद्देश्य ही खत्म हो जाएगा। मण्डली यदि आराधना सेवाओं की जगह सभाएं करने का निर्णय ले लें? कलीसिया को संगति को अपनी जीवन के महत्वपूर्ण भाग के रूप में देखना आवश्यक है, परन्तु ऐसा निर्णय परमेश्वर की आराधना और परमेश्वर की योजना को निकाल देगा। परमेश्वर और यीशु दोनों कलीसिया के केन्द्र में हैं।

परमेश्वर और मसीह हमसे ऊपर हैं और हम से आगे हैं, क्योंकि वे हमें अपने साथ मिलाने के लिए बुलाते हैं। हम उनके निमन्त्रण को उनकी आराधना और सेवा के द्वारा मानते हैं। इसमें

परमेश्वर की वास्तविक आराधना, परमेश्वर के बालकों के रूप में एक-दूसरे के साथ उचित व्यवहार और संसार के समुदायों में सुसमाचार सुनाने की परमेश्वर की योजना को सही ढंग से लागू करना शामिल है। यह हमें महत्वपूर्ण ''इस कारण'' तक ले आता है। हम पढ़ते हैं, ''इस कारण हम इस राज्य को पाकर जो हिलाने का नहीं कृतज्ञ हों, और भक्ति, और भय सहित, परमेश्वर की ऐसी आराधना करें जिससे वह प्रसन्न होता है'' (इब्रानियों 12:28)।

वश में रखी जाने वाली शक्ति (11:20-26)

अपनी सेवकाई के अंतिम सप्ताह के दौरान, हमारा प्रभु दिन के समय मन्दिर में उपदेश दे रहा था। वह शाम को जैतून पहाड़ पर बिताता था। रात के समय वह बैतनिय्याह में चला जाता होगा, जहां मारथा, मरियम, और लाज़र के घर में उसका अच्छा स्वागत होता होगा। कई बार रात रात भर वह गतसमनी बाग में या जैतून पहाड़ की पश्चिमी या पूर्वी ढलान पर कहीं रहता होगा। वह हर बार एक ही जगह से जाने से कतराता होगा, जिससे उन लोगों को जो उससे पीछा छुड़ाना चाहते थे, वह आसानी से न मिले और वह उसे पकड़ न सकें (देखें 11:18)।

विजयी प्रवेश का जोश एक दम से कम नहीं हुआ। लोग यीशु के साथ होने या उसके आस पास होने के अवसर ढूंढ़ते रहे। लोगों की बहुत बड़ी संख्या को दिखाते हुए, उसके पास आने वाले लोगों के सम्बन्ध में लूका ने ''सब'' शब्द का इस्तेमाल किया (लूका 21:38)। इन शब्दों में उनकी निष्ठा भी है। यीशु का दिन के समय मुख्यतया एक ही काम होता था: मन्दिर में अन्यजातियों के आंगन में लोगों को उपदेश देना।

मंगलवार सुबह यीशु जब अपने प्रेरितों के साथ मन्दिर की ओर जा रहे थे तो वे अंजीर के पेड़ के पास से गुजरे, जिसे यीशु ने सोमवार को श्राप दिया था। वह पेड़ सूख चुका था बल्कि ''जड़ तक सूखा हुआ'' था (11:20)। यीशु और उसके साथी उस रास्ते के बजाय जिधर से वे मंगलवार सुबह लौटे थे, सोमवार शाम बैतनिय्याह को दूसरे रास्ते गए होंगे। प्रेरित चकित थे कि यह पेड़ इतनी जल्दी और पूरी तरह से सूख गया था। मुखर स्वभाव वाले पतरस ने यीशु से कहा, ''हे रब्बी, देख! यह अंजीर का पेड़ जिसे तू ने स्राप दिया था, सूख गया है'' (11:21)। दूसरे प्रेरित भी यही सोच रहे होंगे परन्तु पतरस से जो देखा उसे कह दिया।

जवाब में यीशु ने अंजीर के पेड़ को श्राप देने से अपने चुने हुए प्रेरितों का ध्यान एक प्रासंगिकता की ओर दिलाया। यीशु ने राष्ट्रवादी प्रासंगिकता नहीं बनाई बल्कि उसने इन लोगों के लाभ के लिए व्यावहारिक बनाना चुना। उसने एक नैतिक सबक दिया जो उन्हें यहां पर अधिक सहायक होना था। इस गुट के लोगों को कठिनाई के असामान्य पहाड़ों और निराशा की तराइयों का सामना करना था। उनके लिए ऐसे बहुत से गुणों को अपनाना आवश्यक था जिनकी उन्हें आवश्यकता होनी थी। इसलिए यीशु ने शक्ति की तीन बातों की ओर ध्यान लिया जो हर धर्मी व्यक्ति के स्वभाव में होनी चाहिए।

1. *विश्वास।* मरकुस के अनुसार यीशु ने पतरस को उत्तर देते प्रेरितों को केवल इतना कहा, ''परमेश्वर पर विश्वास रखो'' (11:22)। उसने उन्हें बताया कि किसी भी काम में रहने और आगे बढ़ने में फलदायक होने में अपने वाली रुकावटों पर उस विश्वास के द्वारा काबू पाया जाना आवश्यक है जो परमेश्वर में है।

यीशु यह नहीं कह रहा था कि शक्ति विश्वास में है। नहीं, शक्ति तो परमेश्वर में ही है। बेशक इसमें अंतर है। यीशु विश्वास से की जाने वाली प्रार्थना की ओर ध्यान दिला रहा था, न कि प्रार्थना में विश्वास रखने की ओर।

स्वाभाविक रूप में हमारे प्रभु की बात कि ''परमेश्वर में विश्वास रखो'' में अन्य वचनों की गवाही जोड़ी जानी आवश्यक है। याकूब 4:1, 2 के अनुसार हमारे लिए किसी ऐसी बात के लिए प्रार्थना करना गलत होगा, जो हमारे लिए मांगना अनुचित हो। इसके अलावा 2 कुरिन्थियों 12:7-9 के अनुसार, हमें कोई ऐसी चीज़ नहीं मांगनी चाहिए जिसकी हमारे पिता ने हमें बताया है कि हमें आवश्यकता नहीं है। पौलुस ने अपने शरीर में से कांटा निकाले जाने के लिए तीन बार प्रार्थना की, परन्तु परमेश्वर ने उसे और प्रार्थना न करने की आज्ञा दी। उसने पौलुस को बताया कि उसने उसे इसके साथ रहने का अनुग्रह दे देना था, सो पौलुस के लिए धीरज रखते हुए सहनशी होना आवश्यक था (2 कुरि. 12:7-9)। इसके अलावा, परमेश्वर के सामने की जाने वाली विनतियों में हम स्वार्थी होकर बेकार की चीज़ें न मांगें। याकूब ने कहा, ''तुम मांगते हो और पाते नहीं, इसलिए कि बुरी इच्छा से मांगते हो, ताकि अपने भोग-विलाप में उड़ा दो'' (याकूब 4:3)। लूका 22:42 के अनुसार हम यह न मांगें कि पिता की इच्छा से बढ़कर हमारी इच्छाएं पूरी हों। बाग में की गई यीशु की प्रार्थना इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

यीशु ने चाहा कि हम उसकी बात को परमेश्वर के वचन में हमें दी गई सीमाओं के भीतर समझें। वह कई बार एक वचन को दूसरे वचनों के साथ मिलाकर समझाता था (देखें मत्ती 4:5, 6)। उन ईश्वरीय सीमाओं के भीतर जो परमेश्वर ने हमें दी हैं, विश्वास वह सबसे बड़ा गुण है जो चेलों में होना आवश्यक है। यह हमें मनुष्य के लिए उपलब्ध सबसे बड़ी शक्ति यानी परमेश्वर की सामर्थ तक ले आता है। परीक्षाएं आने तक हमें इस शिक्षा को याद रखना चाहिए कि ''परमेश्वर में विश्वास रखो।'' हमें परमेश्वर में *सरगर्म* विश्वास होना आवश्यक है।

2. *प्रार्थना।* 11:23 में यीशु ने विशेष शब्द ''सच'' के साथ प्रार्थना के बारे में अपने उपदेश का आरम्भ किया। इस शब्द से उन निर्देशों के महत्व पर ज़ोर दिया गया जो वह देना वाला था। उसने कहा कि जब हम प्रार्थना करें तो हमें विश्वास होना आवश्यक है: ''इसलिये मैं तुम से कहता हूँ कि जो कुछ तुम प्रार्थना करके माँगो, तो प्रतीति कर लो कि तुम्हें मिल गया, और तुम्हारे लिये हो जाएगा'' (11:24)।

अपने प्रेरितों को उनके पास प्रार्थना के द्वारा परमेश्वर की अथाह शक्ति होने की बात बताते हुए यीशु ने अतिश्योक्ति का इस्तेमाल किया। निकट भविष्य में प्रेरितों के सामने बड़े-बड़े पहाड़ आने वाले थे, जिन्हें हिला पाना उनके लिए कठिन लगना था (11:23)। अलग रूपक का इस्तेमाल करते हुए, वह कह रहा था, ''मांगो, तो तुम्हें दिया जाएगा; ढूंढ़ो, तो तुम पाओगे; खटखटाओ, तो तुम्हारे लिये खोला जाएगा'' (मत्ती 7:7)। उसके शब्दों में प्रार्थना भरे जीवन, प्रार्थना भरी सोच और प्रार्थना भरे काम करने की बात थी। प्रेरितों काम के अनुसार, आगे चलकर प्रेरितों ने परमेश्वर के सामने अपने जीवनों और विश्वास की अपनी प्रार्थनाओं को लाते हुए कठिनाई के बड़े-बड़े पहाड़ों को हटते हुए देखा।

ईश्वरीय सीमाओं के भीतरी यीशु की बात की अजय निश्चितता, अविरणनीय शक्ति और अविश्वसनीय असीमितता है। परन्तु उसकी बात में विश्वास से प्रार्थना करने की बात छिपी हुई

है। पक्का और भरोसा रखने वाला विश्वास यही है। चेले के लिए परमेश्वर की वफ़ादारी पर यकीन रखना, अर्थात यह भरोसा करना कि जो कुछ परमेश्वर ने वायदा किया है वह उसे पूरा करेगा, और अपनी प्रार्थना को इस तरीके से देखना जैसे उसका उत्तर मिल चुका हो, आवश्यक है।

3. *क्षमा।* यीशु ने आगे कहा, ''जब कभी तुम खड़े हुए प्रार्थना करते हो तो यदि तुम्हारे मन में किसी के प्रति कुछ विरोध हो, तो क्षमा करो: इसलिये कि तुम्हारा स्वर्गीय पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा करे'' (11:25)।

यह बात हमारे लिए कुछ आश्चर्यजनक हो सकती है। हम दूसरों को क्षमा करने को शक्ति के रूप में नहीं मानते, और क्षमा के सम्बन्ध को हम पिछली चर्चा के साथ एकदम से नहीं जोड़ते। परन्तु पहाड़ी उपदेश में यीशु इससे कुछ मिलती जुलती बात कह रहा था। ''इसलिये यदि तुम मनुष्य के अपराध क्षमा करोगे, तो तुम्हारा स्वर्गीय पिता भी तुम्हें क्षमा करेगा। और यदि तुम मनुष्यों के अपराध क्षमा न करोगे, तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा न करेगा'' (मत्ती 6:14, 15)। यीशु दूसरों को क्षमा करने की अनिवार्यता को मानता, सिखाता और करता था।

निश्चय ही यीशु हमें याद दिला रहा था कि मसीह का चेला होने का आवश्यक गुण क्षमा का है। बिना क्षमा के मसीह में एक नहीं रहा जा सकता, बिल्कुल वैसे जैसे घर में एकता के लिए क्षमा आवश्यक है। यदि हम अपने मनों में अपने भाई के विरोध में कोई बात रखते हैं जिसे क्षमा किए जाना चाहिए, तो हम विश्वास से भरी प्रार्थना नहीं कर रहे। दूसरों को क्षमा करना विश्वास से बढ़कर शक्तिशाली नहीं है, परन्तु यह प्रार्थना और विश्वास में रुकावट बन सकता है।

कई बार हमें किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाना पड़ता है जिसने हमारा पाप किया हो (मत्ती 18:15), और कई बार हमें किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाना पड़ता है जिसका हमने अपराध किया हो (मत्ती 5:24)। मन फिराने की अपील को लोग चाहे जैसे भी मानें, हमें उन्हें क्षमा करना आवश्यक है। हमारे लिए उनके प्रति क्षमा वाला मन दिखाना आवश्यक है।

निष्कर्ष: जीवन की बड़ी परीक्षाओं का सामना कैसे करें? शक्ति की तीन बातें हैं: विश्वास, प्रार्थना और क्षमा। स्पष्टतया यह तीनों शक्तियां एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं। विश्वास पहले आता है। यदि हम विश्वास नहीं करते, तो प्रार्थना क्यों करें? क्षमा इसमें कहां बैठती है? यीशु ने इसे प्रार्थना से पहले रखा। इस क्रम में ये तीनों हमारे पास परमेश्वर की सबसे बड़ी शक्ति हमारे पास लाकर हमें मनुष्य को मिली शक्ति को काबू में रखने की बड़ी शक्ति देती है।

यीशु बड़ा गुरु (11:27-33)

हमारे प्रभु की पृथ्वी की सेवकाई के अंतिम सप्ताह के मंगलवार को ''झगड़ा का दिन'' नाम दिया जा सकता है। यीशु लगभग दिन चढ़ने से लेकर दिन के खत्म होने तक बहस जैसी चर्चाओं में लगा रहा। सम्भवतया यह यीशु की पूरी सेवकाई में उपदेश देने का सबसे व्यस्त दिन था।

उस मंगलवार, यहूदी जाति के अलग-अलग समूहों के अगुओं के प्रतिनिधियों ने किसी न किसी प्रकार से यीशु का विरोध किया, या उसे बात को चुनौती दी जो वह बता रहा था। प्रधान याजकों, शास्त्रियों और यहूदियों की सबसे बड़ी अदालत महासभा के प्रतिनिधि पुरनियों ने उससे उसके अधिकार पर सवाल किया (11:27-33)। फरीसियों अर्थात उस गुट ने जिसमें

से लोगों के सिखाने वाले होते थे, उसे कर चुकाने के प्रश्न के साथ अपने जाल में फंसाना चाहा (12:13-17)। हेरोदी लोग, यीशु के समय के राजनैतिक माहौल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे, इस अवसर पर फरीसियों के साथ मिल गए। फरीसी और हेरोदी आम तौर पर एक-दूसरे के शत्रु होते थे, परन्तु अपने सामान्य शत्रु यीशु के विरुद्ध मुकद्दमे को मज़बूत बनाने के लिए वे सब एक हो गए। सदूकियों ने जो कि उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करते थे, यीशु से पुनरुत्थान के बारे में प्रश्न पूछे (12:18-27)। उत्तम गुरु के लिए मंगलवार का दिन बहुत व्यस्त भरा था।

अपने चेलों के साथ मन्दिर की ओर जाते हुए यीशु को प्रधान याजकों, शास्त्रियों और महासभा के पुरनियों ने रोक लिया (11:27)। उन्होंने यहूदियों के बीच उपदेश करने और मन्दिर को उसके द्वारा शुद्ध जाने के उसके अधिकार को चुनौती दी। लोग उसे रब्बी मानते थे, और ये अधिकारी जानना चाह रहे थे कि उसे रब्बी किसने बनाया। मन्दिर को शुद्ध करने के अलावा उसने महासभा के अधिकार को नकार दिया और उससे कहीं बड़े अधिकार को दिखाया था। वे जानना चाह रहे थे कि उसे यह अधिकार कहां से मिला।

जिस कारण यीशु के साथ चर्चा करते हुए उन्होंने उससे दो प्रश्न पूछे। एक अर्थ में उन्होंने उससे कहा, ''तू किस अधिकार के होने का दावा करता है?'' और ''हमें उपदेश देने का और यह जो तूने किया है, उसका अधिकार तुझे किसने दिया?'' (11:28)। यह गुट जिसने उसे घेरा हुआ था, उसे लोगों का अनाधिकृत गुरु मानता था। वे आपस में कह रहे थे, ''उसके पास उपदेश देने की हमारे जैसी पढ़ाई नहीं है। उसके पास उसका, जो उसने किया है, अधिकार नहीं है।'' उनके अनुसार उसके पास मन्दिर के मामलों को चलाने या उनमें दखल देने का कोई अधिकार नहीं था। महासभा ने बिना शक और विशेष तौर पर वह अधिकार याजकों और लेवियों को दे रखा था और वे जानना चाह रहे थे कि जो कुछ उसने किया था वह उसने क्यों किया?

महासभा के ये सदस्य यीशु को मन्दिर को शुद्ध करने के उसके अधिकार के सम्बन्ध में लोगों के बीच चुनौती देने के लिए आए थे। उन्हें लगा कि वे उससे यह दावा करने के लिए कि वह मसीहा है मनवा सकते थे; फिर वे उस पर आरोप लगाकर उसे लोगों के मनों में से उतार सकते थे। जब यीशु ने उनके प्रश्नों का उत्तर दे दिया, तो उसने केवल यही नहीं दिखाया कि वह कैसा गुरु है, बल्कि यह भी दिखा दिया कि हमें कैसे गुरु होना चाहिए।

1. *यीशु लगातार गुरु था।* वह दूसरों को उपदेश देता था क्योंकि वह गुरु था। यह उद्देश्य और व्यवहार बना रहा था। अपने जीवन के अंत में वह गुरु बनकर रहा। वह बड़ा गुरु था जो संसार में आया था (देखें 4:2; 6:34)।

जब प्रधान याजाकों और शास्त्रियों और पुरनियों ने उससे सवाल पूछे (11:27, 28), तो उसने उन सवालों से बचने का कोई प्रयास नहीं किया। उसने उन्हें जो भी वे पूछना चाहते थे, पूछने दिया, चाहे वह उसे फंसाने की कोशिश कर रहे थे। अच्छा गुरु सवालों का जवाब देने के लिए तैयार रहता है, परन्तु वह किसी को उन आवश्यक सच्चाइयों को बताने से उसका ध्यान हटाने नहीं देगा, जो छात्रों के लिए सुनना आवश्यक हैं। वह सवालों का स्वागत करता है क्योंकि उनसे उसे सिखाने का अवसर मिल जाता है। जब कोई छात्र प्रश्न पूछता है तो वह गुरु को यह दिखा रहा रहा होता है कि उसकी समझ कहां तक है। इससे गुरु को यह तय करने में सहायता मिलती है कि वह अध्ययन को किस दिशा में ले जाए।

महासभा के ये सदस्य पूर्वाग्रही मनों से प्रश्न पूछ रहे थे, परन्तु यीशु ने उनके प्रश्नों को स्वीकार करके उन्हें बेबाकी से उत्तर दिए। उसने उन्हें सीखने का अवसर दिया यदि उनके मन इसे मानने को तैयार होते।

2. *उसकी शिक्षा में समझ दिखाई दी।* वह इस प्रकार से उत्तर देता था कि पूछने वाले को उसके अर्थों को और गहराई से देखना पड़ता। छात्र को अपनी ही सोच में सोचने की सहायता के लिए प्रश्नों का इस्तेमाल करने में यीशु बेमिसाल था (देखें 11:29, 30)। हमारे प्रभु के प्रश्नों से यहूदी अगुओं को यूहन्ना की शिक्षा याद दिलाई गई कि यीशु मसीहा है। यदि यूहन्ना की सेवकाई को स्वर्ग की स्वीकृति थी, तो इससे यीशु के उपदेश और कामों के आत्मिक सबूत मिला, क्योंकि यूहन्ना ने यीशु की ओर ध्यान दिलाया था।

अपनी समझ से यीशु ने प्रधान याजकों, शास्त्रियों और पुरनियों को उन बातों को जो वह कह रहे थे, गहराई से देखने के लिए विवश किया। यीशु कितना ज़बर्दस्त गुरु था!

3. *वह सच्चा और ईमानदार गुरु था।* वह सच्चाई पर टिका रहा। उसने महासभा के इन प्रतिनिधियों को उस सच्चाई से जो वह था और उस सच्चाई से जो वह लोगों को सिखाना चाह रहा था, हटाने नहीं दिया। अच्छा गुरु सच्चाई के साथ खड़ा रहता है।

इन लोगों को यीशु का प्रश्न समझ में आ गया होगा और तुरन्त उन्हें पता चल गया होगा कि वे खुद फंस गए हैं। वे यह नहीं कह सकते थे कि यूहन्ना के पास कोई अधिकार नहीं था, क्योंकि लोगों का कहना था कि वह नबी है (11:32)। यदि वे यह मान लेते कि वह नबी है, तो इसका मतलब यह होना था कि "फिर तुम ने उसकी प्रतीति क्यों न की?" (11:31)। यदि उन्होंने यूहन्ना पर विश्वास करने का निर्णय कर लिया था तो उन्होंने यीशु को मसीहा क्यों नहीं माना, जैसा कि यूहन्ना ने उसकी पहचान करवाई थी?

यीशु के प्रश्नों से अगुवे उलझन में पड़ गए। उसने देखा कि वे इन प्रश्नों के उत्तर ईमानदारी से नहीं देना चाहते। इसलिए उसने उनसे कहा कि जब वे उसके प्रश्नों का उत्तर देंगे तभी वह उनके प्रश्नों का उत्तर देगा। यदि ये अगुवे सचमुच में यीशु के साथ चलना चाहते थे, तो उन्हें उसके बारे में सच्चाई का सामना करना पड़ना था।

निष्कर्ष: यीशु किस प्रकार का गुरु था? वह किस प्रकार का बहस करने वाला था? क्या वह लगातार गुरु, तर्कसंगत गुरु, और समझदार गुरु था और ऐसा गुरु था जो परमेश्वर की इच्छा के अनुसार दृढ़ बना रहा।

यदि हम उन बातों को मानें जिनका उसने नमूना दिया, तो हम भी अच्छे गुरु बन सकते हैं। हमें सच्चाई के प्रति समर्पण के साथ आरम्भ करना आवश्यक है। हर सच्ची शिक्षा का आरम्भ ईमानदारी से होता है। इन धार्मिक गुरुओं ने उस कोने की ओर देखा जिसमें वे थे और कहने लगे, "हम नहीं जानते" (11:33)। उनके उत्तर से पता चल गया कि उन्होंने उस निष्कर्ष के साथ ईमानदार नहीं होना था जिस तक यीशु ने उन्हें ले जाना था। यदि वे यीशु के प्रश्न का उत्तर ईमानदारी से देते तो उन्होंने अपने आपको दोषी ठहराना था और उद्धार के मार्ग पर चलने को मान लेना था।

किसी धार्मिक अगुवे या यीशु के चेले के लिए होने वाली सबसे बुरी बात उसकी ईमानदारी का खो जाना है। जब वह ऐसा करता है तो वह अपने आपको परमेश्वर की असली इच्छा तक

पहुंचने से रोक देता है।

यीशु हमें कभी भी गुमराह नहीं करेगा। दूसरे लोगों ने सच्चाई की बातें की हैं, परन्तु यीशु खुद सच्चाई है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वह रुककर, हर किसी को, जो राज्य के उसके संदेश को सुनना चाह रहा हो, बताना चाह रहा था। जब तक हम उसकी इच्छा की खोज कर रहे होते हैं, तब तक वह हमें अगुआई देता रहता है। आइए हम उसकी ओर मुड़कर उसके वचन का ग्रहण कर लें। यह हमें दूसरों को सीखने में अगुआई करने और ज्योति में बने रहने के योग्य बनाएगा।

टिप्पणियां

[1]स्पष्टतया यीशु ने पहले इस ''कोढ़ी'' को चंगा किया था, क्योंकि व्यवस्था में किसी कोढ़ी के घर में जाने की मनाही की गई थी। जब यीशु कोड़ी से मिला तो उसने लगभग तुरन्त आश्चर्यकर्म कर दिया (देखें मत्ती 10:8; 15:5; लूका 7:22; 17:12-19)। [2]विलियम हैंड्रिक्सन, *एक्सपोज़िशन ऑफ़ द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू मरकुस,* न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्री (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: बेकर बुक हाउस, 1975), 468. हैंड्रिक्सन ने रविवार से मंगलवार तक यीशु की हर दिन की गतिविधियों का सर्वेक्षण किया। [3]समानांतर विवरण मत्ती 21:1-11; लूका 19:29-44 और यूहन्ना 12:12-19 में हैं। [4]इस घटना को कई धार्मिक समुहों द्वारा ''पांच संडे'' (खजुरी रविवार) के रूप में याद किया जाता है। [5]जोसेफ हेनरी थेयर, *ए ग्रीक-इंग्लिश लैक्सिकन ऑफ़ द न्यू टैस्टामैंट* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: ज़ौंडरवन पब्लिशिंग हाउस, 1962), 682. इस परिभाषा में इस आश्य से कि यह ''भलाई'' किसी से ''दयालु होने'' यानी ''हमारे साथ भलाई करने'' के लिए कहने का विचार शामल है। [6]हैंड्रिक्सन, 437. [7]किसी राजा के साथ व्यवहार करने का यह परम्परागत ढंग था। पुराने नियम में 2 राजाओं 9:13 में लोगों ने येहू के सामने अपने वस्त्र बिछाए। [8]थेयर, 299, 422. [9]मरियम, मरथा और लाज़र के लिए बारहों को एक घर में ठहराना असुविधाजनक होता था; साथी चेले आनन्द से कुछ प्रेरितों को अपने यहां ले गए होंगे। निश्चय ही बैतनिय्याह में शमौन कोढ़ी ने भी अपना घर खोल दिया (मत्ती 26:6)। ऐसा लगता है कि यीशु ने अपने क्रूस पर चढ़ाए जाने से पहली रात जैतून पहाड़ पर गतसमनी में बिताई (मरकुस 14:26)। [10]समानांतर विवरण मत्ती 21:18, 19 में है।

[11]वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे की व्याख्या है कि फल पिछली फसह का रह गया होगा कमज़ोर लगती है। (वारेन डब्ल्यू. वियर्सबे, *द वियर्सबे बाइबल कॉमैंट्री: न्यू टैस्टामैंट* [कोलोराडो स्प्रिंग्स, कोलोराडो: डेविड सी. कुक, 2007], 121.) [12]आर. ए. कोल, *द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू सेंट मरकुस: ऐन इंट्रोडक्शन ऐंड कॉमैंट्री,* द टिंडेल न्यू टैस्टामैंट कॉमैंट्रीस (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एडज़मैंस पब्लिशिंग कं., 1973), 177. [13]वहीं. [14]समानांतर विवरण मत्ती 21:12-17 और लूका 19:45-48 में हैं। पहले के शुद्ध किए जाने का विवरण यूहन्ना 2:13-22 में दिया गया है। [15]ई. पी. सैंडर्स, *जूडिसम: प्रैक्टिस ऐंड बिलीफ़, 63सीई - 66सीई* (मिनियापोलिस: फोर्ट्रेस प्रेस, 2016), 86. [16]लियोन मौरिस, *स्टडीज़ इन द फोर्थ गॉस्पल* (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एडज़मैंस पब्लिशिंग कं., 1969), 26-27 में उद्धृत किया गया है। (देखें यूहन्ना 2:14-16.) [17]देखें ऐलन चैपल, ''जीज़स' इंट्रवैंशन इन द टैम्पल: वंस ऑर टविस,'' *जर्नल ऑफ़ द इवैंजलिकल सोसाइटी* 58 (सितंबर 20, 2015): 545-69. [18]जे. डब्ल्यू. मैक्गर्वे ऐंड फिलिप वाई. पेंडल्टन, *द फ़ोरफ़ोल्ड गॉस्पल ऑर ए हार्मनी ऑफ़ द फ़ोर गॉस्पल्स* (सिनसिनाटी: स्टैंडर्ड पब्लिशिंग कं., 1914), 582. [19]मिशना *बेराकोथ* 9.5. मिशना और गेमारा को मिलाकर ताल्मुड बनता है। मिशना में यहूदियों की परम्परागत ''ज़बानी व्यवस्था दूसरी शताब्दी ईसवी के अंत तक रही'' है। ओर गेमारा में ''200 से 500 ई. तक के मिशना पर रब्बियों के टिप्पणियां'' हैं। (जे. डी. डग्लस, सम्पा, *द न्यू बाइबल डिक्शनरी* [ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एडज़मैंस पब्लिशिंग कं., 1962], 1237 में सी. एल. फिनबर्ग, ''ताल्मुड ऐंड मिड्राश।'') [20]यह सच है कि सभी याजक बेइमान नहीं थे। उदाहरण के लिए ताल्मुड में बताया गया है कि जब रब्बान इम ओन बेन गमलीएल (प्रेरितों 5:34; 22:3 में ''गमलीएल का पुत्र'') को जब पता चला कि कबूतर के लिए एक सोने का सिक्का लिया जा रहा है तो उसने ज़ोर दिया कि कीमत घटनाकर चांदी का एक सिक्का किया जाए। (मिशना *केरिथोथ* 1.7.)

[21]*द इंटरनेशनल बाइबल कॉमेंट्री,* न्यू संस्क., सम्पा. एफ़. एफ़. ब्रूस (कारमेल, न्यू यार्क: गाइडपोस्ट्स, 1986), 1172 में स्टीफन एस. शॉर्ट, ''मरकुस।'' विलियम बार्कले ने ज़ोर दिया कि ''सूरी'' सिक्का भी मान्य नहीं था और मन्दिर के शेकेल में चुकाई जानी आवश्यक थी। (विलियम बार्कले, *द गॉस्पल ऑफ़ मरकुस,* दूसरा संस्करण, द डेली स्टडी बाइबल [फिलाडेल्फिया: वेस्टमिंस्टर प्रेस, 1956], 284.) [22]हैंड्रिक्सन, 452. [23]इस आंगन के आगे, ''स्त्रियों का आंगन'' था, जिसके आगे महिलाएं तब तक नहीं जा सकती थीं जब तक वे बलिदान करने के लिए न आई हों। इसके आगे ''इस्राएलियों का आंगन'' था जहां अधिकतर बड़ी सभाएं होती थीं। अंत में ''याजकों का आंगन'' था। उसके बाद नियोस यानी ''सचमुच का मन्दिर'' था। (बार्कले, 284.) [24]डोनल्ड इंग्लिश, *द मैसेज ऑफ़ मरकुस: द मिस्टरी ऑफ़ फ़ेथ,* द बाइबल स्पीक्स टुडे (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोय: इंटर-वर्सिटी प्रेस, 1992), 190. [25]एक सामानांतर विवरण मत्ती 21:20-22 में है। [26]अन्य विवरण मत्ती 21:1-25:46; लूका 20:1-21:36; यूहन्ना 12:20-50 में हैं। [27]देखें मत्ती 26:25, 49; मरकुस 10:51; 14:45; यूहन्ना 1:50; 4:31; 6:25; 9:2; 11:8. [28]हैंड्रिक्सन, 457, एन. 549. [29]शॉर्ट, 1172. [30]विश्वास के चमत्कारी दान का उल्लेख 1 कुरिन्थियों 12:9 में है।

[31]बार्कले, 287. [32]मार्टल पेस, *हिब्रू,* टुथ फ़ॉर टुडे कॉमेंट्री सीरीज़ (सरसी, आरकैंसा: रिसोर्स पब्लिकेशंस, 2007), 74-77. इब्रानियों 2:3, 4 के सम्बन्ध में इस पर विस्तृत चर्चा की गई है कि परमेश्वर आज आश्चर्यकर्म क्यों नहीं करता। [33]11:25 चाहे यह दिखाता है कि प्रार्थना करते समय खड़े होना (घुटने टेकना नहीं) आम बात थी, परन्तु इसकी आज्ञा नहीं थी। हम उन बातों को नियम न बनाए जिनकी परमेश्वर ने आज्ञा नहीं दी है; परन्तु यदि प्रार्थना में घुटने टेकना परमेश्वर के सामने हमारे दीन होने में सहायक है तो हमें इसे करना चाहिए। प्रार्थना के लिए खड़े होने के और उदाहरण उत्पत्ति 18:22; 1 शमूएल 1:26; 1 राजाओं 8:22; नहेम्याह 9:4; मत्ती 6:5 में हैं। [34]कोल, 182. [35]समानांतर विवरण मत्ती 21:23-27 और लूका 20:1-8 में हैं। [36]बार्कले, 290. जोसेफ़स *वार्स* 5.5 [184-247] और *एंटिक्विटीज़* 20.9.7 [221] में मन्दिर का वर्णन किया। [37]देखें 2:7-11, 18-22, 24-28; 3:22-30; 8:11-13; 10:2-12; 11:27-33; 12:18-27. [38]NLT में है ''उद्धार के लिए अपने अवसर को मानो।''